{deX ñVmoÌ g§J«h

g§H$bZ/g§nmXZ Ed§ nÚmZwdmX

आचार्य 108 श्री विशदसागरजी महाराज

àHmeH

श्रीमती कमलाबाई बाबूलाल जैन, गिंदोडी

निवाई (टोंक)

कृति

विशद स्तोत्र संग्रह

संकलन/संपादन

आचार्य 108 श्री विशदसागरजी महाराज

सहयोगी :

* aVZbmb Z¥rË`m
* ~«. bmbOr Ed§ ~«. {dH$meOr · \$moZ : 9829127533, 9829076085

द्वितीय संस्करण – 2005, {ZdmB©   *प्रतियाँ:* 1000

प्राप्ति स्थान

* n.ny. AmMm`© 108 lr {deXgmJaOr _hmamO g§K
* lr {deXgmJa _mÜ`{_H$ {dÚmb`, ~am¡{X`m H$bm±, gmJa (_.à.)
  \$moZ : 07581-274244
* O¡Z gamodaa g{_{V, O`nwa (amO.), 2142, निर्मल निकुंज, रेडियो मार्केट, मनिहारों का रास्ता, जयपुर ● फोन : 3094018 (ऑफिस), 2319907
* H$_bMÝX O¡Z (N>m~‹S>m), म.नं. 1847, बंजी ठेलियों की धर्मशाला के पीछे, घी वालों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ● फोन : 2566167
* ~m~ybmb O¡Z, गिंदोड़ी वाले
  निवास–निवाई (टोंक) राजस्थान

nwZ: _wÐU gh`moJ
  am{e 51/- _mÌ

मुद्रक

राजू ग्राफिक आर्ट, मनिहारों का रास्ता, जयपुर
फोन : 0141–2313339, मो.नं. : 9829050791

AnZr ~mV

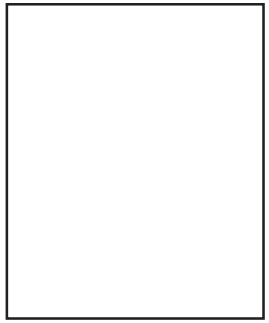

Xdm- **जग में जितने जीव हैं, सबको सुख की चाह।**
दुःख पाते संसार में, छोड़ धर्म की राह।।

AmO H$mBÝgmZ {H$VZm ~mdbm hmo J`m h¡, \y$b H$s Mmh _| eyb ~mo ahm h¡Ÿ& Bg ~mV H$mo ^yb ahm h¡ {H$ ^{dî`_| dh eyb ñd`§ H$mo hr nJ _| Mw^|Jo Am¡a AghZr` nr‹S>m X|JoŸ& AV: **""AmO H$mo nwéfmW© H$b H$m ^m½` hmoVm h¡Ÿ&''** Bg gy{º$ H$mo A§JrH$ma H$a Ho$ {OZ Ým^{º$, Y_© H$m à^md _ZmoH$ h¡Ÿ& Bg hoVw lr _Vr H$_bmXodr O¡Z Y_©nËZr lr ~m~ybmbOr O¡Z, {ZdmB© Ho$ ^md hþE {H$ EH$ nwñVH$ hmo {Og_| g^r ñVmoÌ H$m g§J«h hmo Am¡a {ZdbXZ {H$`m {H$_w{Zlr AmnBg H$m` H$mo H$aZo Ho$ {bE Amerdm©X àXmZ H$a|Ÿ&

Bg nwñVH$ _| g_`-g_` na Hw$N> g§ñH¥$V ñVmoÌm| H$m nÚmZwdmX {H$`m Wm CZH$mo ^r Bg nwñVH$ _| g§J«hrV {H$`m h¡Ÿ& {d{^Þ nwñVH$m| H$m Bg H$m`© _| ghmam {b`m J`m h¡& {Oggo EH$ {ÌVH$s JB© gm_J«r _| Hw$N> EH$ê$nVm Z ~¡R>Zo go Og _| hoa-\o$a H$aZm n‹S>mŸ& Bg H$o {bE h_ H$j d, bo IH$m| Ho$ à{V j_m àmW©Zr h¢Ÿ&

- AmMm`© {deXgmJa

प्रकाशकीय

तन्नमामि परम् ज्योति-खाङ्‌ मनस्‌ गोचरम्‌।
उन्मूलयत्य विद्यां-यद्‌ विद्यामुन्मीलयत्यपि।।

मैं उस उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप केवलज्ञान को नमस्कार करता हूँ, जो वचन और मन के अगोचर है। अज्ञान को नष्ट करता है और ज्ञान को प्रकाशित करता है।

आज का इंसान अपनी जिंदगी से इतना बेखबर है कि वह भौतिकता की चकाचौंध में अन्धा होकर तन और धन की चाह में दौड़ रहा है। वह अपने पारमार्थिक कर्त्तव्य पथ से विचलित होकर मात्र धन-दौलत तक ही सीमित रह गया है और इस प्रकार से वह अपने आत्म स्वरूप से अपरिचित हो गया है।

राजस्थान प्रान्त के टोंक जिला अंतर्गत निवाई (वनस्थली) जिसे सम्पूर्ण राजस्थान में धर्म प्राणनगरी कहा जाता है। वहाँ पर पावन वर्षायोग-2005 में अपनी साधना में रत् परम पूज्य क्षमामूर्ति आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज के ससंघ चातुर्मास में होने वाले सम्यक्ज्ञान शिक्षण शिविर का जो आयोजन किया गया। उसमें अनेक लोगों ने श्रावकोचित्त कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त किया तथा दिनांक 8 अक्टूबर, 2005 से 16 अक्टूबर, 2005 तक होने वाले समोशरण महामण्डल विधान एवं विशद सागर विश्राम गृह का शिलान्यास किया गया। परम पूज्य आचार्यश्री के मुखारबिन्द से ज्ञान की जो फुहारें उठी उनमें आचार्यश्री द्वारा रचित स्तुतियों एवं स्तोत्रों को संगीतकार के मुख से सुनकर निवाई तथा आस-पास से आया हुआ जन-समूह मुग्ध हो गया। तब आचार्यश्री की देशना एवं काव्य से प्रभावित होकर क्षुल्लक श्री 105 विबुद्धसागरजी की प्रेरणा से श्रीमती कमलादेवी धर्मपत्नि श्री बाबूलाल जैन के द्वारा अपने पूज्य पिता श्री चंदालालजी की स्मृति में **''विशद स्तुति संग्रह''** का प्रकाशन कराया गया है।

धर्मप्रेमी भव्य जीव स्तुति एवं स्तोत्र के माध्यम से धर्म-ध्यान कर अपनी आत्मा का कल्याण कर सकें ऐसी मेरी भावना है।

संत सद्‌ज्ञान की मिशाल, लिए आते हैं। साथ में संयम की दाल, लिए आते हैं।।
संत आते तो है, 'अंजान' मुसाफिर बनकर। जब जाते हैं तो मेहमान, बनके जाते हैं।।

-H$_bMÝX N>m~S>m
जौहरी बाजार, जयपुर

अनुक्रमणिका

क्र.	विवरण		पृष्ठ संख्या
1	मंगलाष्टकम् (संस्कृत)	अर्हन्तो भगवन्त...	9
2	मंगलाष्टक (हिन्दी) *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	पूजनीय इन्द्रों...	11
3	सुप्रभात-स्तोत्रम् (संस्कृत)	यत्सवर्गा...	13
4	सुप्रभात-स्तोत्र (हिन्दी) *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	गर्भ जन्म के...	15
5	श्री नवदेवता स्तोत्रम् मंगलाष्टकम् (संस्कृत)	श्रीमन्तों...	18
6	श्री नवदेवता स्तोत्र *आचार्य श्री विशदसागरजी)*	तीन लोक ...	20
7	श्री महावीराष्टकस्तोत्रम् (संस्कृत)	यदीये चैतन्ये...	22
8	श्री महावीराष्टकस्तोत्र *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	ज्ञानादर्श में...	24
9	श्री महावीराष्टक स्तोत्र (भाषा)	चेतन अचेतन...	26
10	भक्तामर स्तोत्र भाषा *(पद्यानुवाद - आचार्य श्री विशदसागरजी)*		28
11	तत्त्वार्थ सूत्र संस्कृत *(श्री उमास्वामी विरचित)*		33
12	श्री सरस्वती नाम स्तोत्र (संस्कृत)	सरस्वत्या प्रसादेन...	46
13	सरस्वती स्तोत्र *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	कोटि चन्द्र सूर्य...	47
14	सरस्वती नाम स्तोत्र *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	सरस्वती की कृपा...	48
15	दर्शन पाठ (संस्कृत)	दर्शनं देव...	49
16	दर्शन पाठ (हिन्दी) *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	दर्शन श्री देवाधिदेव...	51
17	दर्शन पाठ	यह भावना हमारी...	52
18	दर्शन पाठ *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	जिन दर्शन होता भला...	53
19	वीतरागस्तोत्रम् (संस्कृत)	शिवं शुद्ध बुद्धं...	55
20	वीतरागस्तोत्र (हिन्दी) *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	शुद्ध बुद्ध शिव...	56
21	परमानन्दस्तोत्रम् एवं स्वरूप	परमानन्द संयुक्तं...	57
22	श्री सरस्वतीस्तोत्रम्	चन्द्रार्क कोटि...	59

क्र.	विवरण		पृष्ठ संख्या
23	श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्रम्	स्वयंभुवे...	61
24	स्वयंभूस्तोत्र (भाषा)	राजविषे जुगलनि...	78
25	श्री स्वयम्भूस्तोत्र-दोहा थुदि *(आचार्य श्री विद्यासागरजी विरचित)*		80
26	चौबीस तीर्थंकर स्तवन *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*		85
27	श्री विमल वंदनाष्टक *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	शरद-चन्द्र...	95
28	आचार्य श्री विशद सागरः भक्तिः	स मुनि विशदं....	97
29	ऋषि मंडल स्तोत्रम् (संस्कृत)	आद्यंताक्षर...	98
30	अथ नवग्रह शांति स्तोत्रम्	जगद्गुरुं...	107
31	जैन रक्षा स्तोत्रम्	श्री जिनं भक्ति....	108
32	वज्रपंजर स्तोत्रम्	परमेष्ठी नमस्कार...	110
33	जिन पंजर स्तोत्रम्	ॐ ह्रीं श्रीं...	111
34	लक्ष्मी स्तोत्र	लक्ष्मी महातुल्य...	114
35	पार्श्वनाथ स्तोत्र	ॐ नमः पार्श्वनाथाय...	115
36	श्री उपसर्गहर पार्श्वनाथ स्तोत्र	उवसग्गहरं....	115
37	चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र	श्री शारदा धार...	117
38	संकट निवारक पार्श्वनाथ स्तोत्रम्	ॐ नमो भगवन्ते...	118
39	श्री पार्श्वनाथ स्तोत्रम्	नरेन्द्रं-फणीन्द्रं...	119
40	श्री चंडोग्रपार्श्वनाथ स्तोत्र	ॐ नमो अर्हते...	120
41	श्री पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति	तुम से लगि...	121
42	घण्टाकरण महावीर मंत्र स्तोत्र	ॐ आं क्रों श्रीं....	122
43	अथ घण्टाकरण मंत्र	ॐ घंटाकर्णो...	124
44	विपत्तिनाशक चन्द्रप्रभः स्तोत्रम्	चन्द्रप्रभः....	124
45	चैत्यालय अष्टक *(आ. श्री विशदसागरजी महाराज)*	श्री जिन भवन...	125
46	करुणाष्टक *(आ. श्री पद्मनन्दिजी विरचित)*	त्रिभुवन गुरो...	127
47	करुणाष्टक *(आ. श्री विशदसागरजी महाराज)*	त्रिभुवन गुरो...	128

क्र.	विवरण		पृष्ठ संख्या
48	अद्याष्टक (संस्कृत)	अद्य मे सफलं...	129
49	अद्याष्टक *(आ. श्री विशदसागरजी महाराज)*	हे देव ! ...	131
50	जिनाष्टक (संस्कृत)	गत्वा क्षियेर्वियति...	133
51	जिनाष्टक (हिन्दी) *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	पृथ्वी से आकाश...	135
52	निरंजन स्तोत्र	स्थानं न मानं...	137
53	एकीभाव स्तोत्र	एकमेक होकर...	138
54	विषपहार स्तोत्र भाषा *(श्री 'कुमुद' व पुष्पेन्द्र खुरई प्रणीत)*		143
55	कल्याण मंदिर स्तोत्र भाषा	श्रेय सिंधु कल्याणकर...	151
56	एक सौ आठ (108) नाम माला	ॐकार तू ही...	159
57	गोमटेश थुदि (प्राकृत)	विसट्ट कंदोट्ट...	160
58	गोमटेश स्तुति *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	चन्द्र समान...	161
59	आचार्य वंदना	पौर्वाह्निक...	163
60	दोषों की आलोचना		166
61	पञ्च गुरु भक्ति (प्राकृत)	मणुय-णाइंद...	167
62	पञ्च महागुरु भक्ति *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	कल्याण पाए...	169
63	गणधर-वलय स्तोत्र *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	कर्म घातिया...	171
64	दर्शन स्तुति	अति पुण्य उदय...	173
65	दर्शन स्तुति	सकल ज्ञेय ज्ञायक...	174
66	देव स्तुति	प्रभु पतित पावन...	176
67	आराधना पाठ	मैं देव नित अरहंत...	177
68	प्रातःकालीन स्तुति	वीतराग सर्वज्ञ हितंकर...	178
69	सांयकालीन स्तुति	हे सर्वज्ञ वीर..	179
70	आध्यात्मिक शयन गीतिका (संस्कृत) *(आचार्य श्री शुभचन्द्रजी)*		180
71	अध्यात्म शयन गीतिका *(आ.श्री विशदसागरजी)*	शुद्ध बुद्ध हो नित्य...	181
72	मेरी भावना	जिसने राग द्वेष का..	183
73	वैराग्य भावना	बीज राख फल...	185
74	बारह भावना *(मंगतरायजी कृत)*	*बंदूँ श्री अरिहन्त*	188
75	बारह भावना *(कविवर भूधरदासजी कृत)*	*राजा राणा...*	193
76	सोलह कारण भावना *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*		195
77	सामायिक करने की प्रारंभिक विधि		202
78	सामायिक पाठ (भाषा)	काल अनन्त..	223
79	आलोचना पाठ	वंदो पाँचों परमगुरु...	225
80	निर्वाण काण्ड भाषा		232
81	सामायिक पाठ (परमात्म बत्तीसी)	नित देव ! मेरी...	234
82	कल्याणालोचना		240
83	क्षमा वंदना *(आचार्य श्री विशदसागरजी)*	क्षमा करना...	247
84	समाधिमरण (भाषा)	गौतम स्वामी बंदौ...	248
85	समाधिमरण (बड़ा)	वन्दो श्री अरिहन्त...	250
86	श्री सोलहकारण भावना		260
87	दश लक्षण धर्म भावना		261
88	स्तुति (विनती)	अहो जगत गुरुदेव...	263
89	संक्षिप्त सूतक विधि		264
90	भक्ष-अभक्ष्य		266
91	व्रत ग्रहण करने का संकल्प		268
92	व्रत उद्यापन (हाथ जोड़ने) का पाठ		269
93	नवजात बालक का प्रथम जिन-दर्शन विधि		270
94	नामकरण संस्कार		272

मंगलाष्टकम्

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिता: सिद्धाश्च सिद्धीश्वरा:।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा: पूज्या उपाध्यायका:।।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका:।
पञ्चैते परमेष्ठिन: प्रतिदिनं कुर्वन्तु (ते) वो मंगलम्।।

श्रीमन्नम्र - सुरा - सुरेन्द्र - मुकुट, प्रद्योत - रत्नप्रभा-
भास्वत्पाद-नखेन्दव: प्रवचनाम्भोधीन्दव: स्थायिन:।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठका: साधव:,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरूव: कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।1।।

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति-श्री-नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रद:।
धर्म: सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।2।।

नाभेयादि जिना:प्रशस्त-वदना, ख्याताश्चतुर्विंशति:,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधरा: सप्तोत्तरा विंशतिस्ः
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषा: कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।3।।

ये सर्वौषधऋद्धय: सुतपसो वृद्धिंगता: पञ्च ये,
ये चाष्टांग-महानिमित्त-कुशलाश्, चाष्टौ वियच्चारिण:।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि ऋद्धीश्वरा:,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृत: कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।4।।

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिता:,
जम्बू शाल्मलि-चैत्य-शाखिषुतथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहा: कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।5।।

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपते: सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनय: प्रसिद्धविभवा: कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।6।।

देव्योऽष्टौ च जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवता,
श्रीतीर्थंकर मातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा।
द्वात्रिंशत् त्रिदशाऽधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा,
दिक्पाला दश चैत्यमी सुरगणा: कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।7।।

यो गर्भाऽवतरोत्सवो भगवतां जन्माऽभिषेकोत्सवो,
यो जात: परिनिष्क्रमेण विभवो य: केवलज्ञानभाक्।
य: कैवल्य पुर प्रवेश महिमा संभावित: स्वर्गिभि:,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्।।8।।

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-संपत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुष:।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थ कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यापाय रहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि।।9।।

।। इति मंगलाष्टकम्।।

मंगलाष्टक

–आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

पूज्यनीय इन्द्रों से अर्हत्, सिद्ध क्षेत्र सिद्धी स्वामी।
जिन शासन को उन्नत करते, सूरी मुक्ती पथगामी।।
उपाध्याय हैं ज्ञान प्रदायक, साधु रत्नत्रय धारी।
परमेष्ठी प्रतिदिन पापों के, नाशक हों मंगलकारी।।1।।

नमित सुरासुर के मुकुटों की, मणिमय कांति शुभ्र महान्।
प्रवचन सागर की वृद्धि को, प्रभु पद नख हैं चंद्र समान।।
योगी जिनकी स्तुति करते, गुण के सागर अनगारी।
परमेष्ठी प्रतिदिन पापों के, नाशक हों मंगलकारी।।2।।

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण युत, निर्मल रत्नत्रयधारी।
मोक्ष नगर के स्वामी श्री जिन, मोक्ष प्रदाता उपकारी।।
जिन आगम जिन चैत्य हमारे, जिन चैत्यालय सुखकारी।
धर्म चतुर्विध पंच पाप के, नाशक हों मंगलकारी।।3।।

तीन लोक में ख्यात हुए हैं, ऋषभादि चौबिस जिनदेव।
श्रीयुत द्वादश चक्रवर्ति हैं, नारायण नव हैं बलदेव।।
प्रति नारायण सहित तिरेसठ, महापुरुष महिमाधारी।
पुरुष शलाका पंच पाप के, नाशक हों मंगलकारी।।4।।

जया आदि हैं अष्ट देवियाँ, सोलह विद्यादिक हैं देव।
श्रीयुत तीर्थंकर के माता–पिता यक्ष–यक्षी भी एव।।
देवों के स्वामी बत्तिस वसु, दिक् कन्याएँ मनहारी।
दश दिक्पाल सहित विघ्नों के, नाशक हों मंगलकारी।।5।।

सुतप वृद्धि करके सर्वौषधि, ऋद्धी पाई पञ्च प्रकार।
वसु विधि महा निमित् के ज्ञाता, वसुविधि चारण ऋद्धीधार।।
पंच ज्ञान तिय बल भी पाये, सप्त बुद्धि ऋद्धीधारी।
ये सब गण नायक पापों के, नाशक हों मंगलकारी।।6।।

आदिनाथ स्वामी अष्टापद, वासुपूज्य चंपापुर जी।
नेमिनाथ गिरनार गिरि से, महावीर पावापुर जी।।
बीस जिनेश सम्मेदशिखर से, मोक्ष विभव अतिशयकारी।
सिद्ध क्षेत्र पांचों पापों के, नाशक हों मंगलकारी।।7।।

व्यंतर भवन विमान ज्योतिषी, मेरु कुलाचल इष्वाकार।
जंबू शाल्मलि चैत्य वृक्ष की, शाखा नंदीश्वर वक्षार।।
रूप्यादि कुण्डल मनुजोत्तर, में जिनग्रह अतिशयकारी।
वे सब ही पांचों पापों के, नाशक हों मंगलकारी।।8।।

तीर्थंकर जिन भगवंतों को, गर्भ जन्म के उत्सव में।
दीक्षा केवलज्ञान विभव अरु, मोक्ष प्रवेश महोत्सव में।।
कल्याणक को प्राप्त हुए तब, देव किए अतिशय भारी।
कल्याणक पांचों पापों के, नाशक हों मंगलकारी।।9।।

धन वैभव सौभाग्य प्रदायक, जिन मंगल अष्टक धारा।
सुप्रभात कल्याण महोत्सव, में सुनते–पढ़ते न्यारा।।
धर्म अर्थ अरु काम समन्वित, लक्ष्मी हो आश्रयकारी।
मोक्ष लक्ष्मी 'विशद' प्राप्त कर, होते हैं मंगलकारी।।10।।

।। इति मंगलाष्टकम् ।।

सुप्रभात-स्तोत्रम्

यत्स्वर्गा-वतरोत्सवे यदभवज्, जन्मा-भिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञान-प्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाण-गमोत्सवे जिनपतेः, पूजाद्भुतं तद्भवैः,
संगीत स्तुति मंगलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः ।।1 ।।

श्रीमन्नतामर किरीट मणिप्रभाभि,
रालीढपाद युग दुर्द्धर कर्मदूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! शम्भवाख्य !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।2 ।।

छत्रत्रय-प्रचल चामर-वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र।
पद्मप्रभा रुणमणि द्युतिभासुराङ्ग,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।3 ।।

अर्हन् सुपार्श्व कदली-दलवर्ण गात्र,
प्रालेयतार-गिरि मौक्तिक वर्णगौर।
चन्द्रप्रभ-स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।4 ।।

सन्तप्त काञ्चनरुचे जिन-शीतलाख्य,
श्रेयान् विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्कपंक।
बंधूक-बंधुररुचे जिनवासुपूज्य,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।5 ।।

उद्दण्ड-दर्पक-रिपो विमला-मलाङ्ग,
स्थेमन्-ननन्त-जिदनन्त-सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्म-कल्मष-विवर्जित-धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।6 ।।

देवामरी-कुसुम-सन्निभ-शान्तिनाथ,
कुन्थो! दयागुण विभूषण भूषिताङ्ग।
देवाधिदेव-भगवन्-नरतीर्थ-नाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।7 ।।

यन्मोह मल्लमद-भञ्जन-मल्लिनाथ,
क्षेमङ्करा-वितथ-शासन-सुव्रताख्य।
यत्-सम्पदा प्रशमितो नमि नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।8 ।।

तापिच्छ-गुच्छ-रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ,
घोरोपसर्ग-विजयिन् जिन-पार्श्वनाथ।
स्याद्वाद सूक्ति मणि-दर्पण वर्द्धमान,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।9 ।।

प्रालेय-नील हरि-तारुण पीत-भासं,
यन्मूर्ति-मव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्तति-शतं जिन-वल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।10 ।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशति तीर्थानां, सुप्रभातं दिने-दिने ।।11 ।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने-दिने ।।12।।

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व सुखावहम् ।।13।।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्।
अज्ञानतिमिरांधानां, नित्यमस्तमितो रविः ।।14।।

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवीदग्धा, शुक्लध्यानोग्र वह्निना ।।15।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्यहितकर्त्तृणां, जिनानामेव शासनम् ।।16।।

।। इति सुप्रभात-स्तोत्रम् ।।

सुप्रभात स्तोत्र

-आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

गर्भ जन्म के उत्सव में अरु, दीक्षा ग्रहण महोत्सव में।
अखिल ज्ञान कल्याणक में भी, मोक्ष गमन के उत्सव में।।
भक्ति गीत प्रार्थना मंगल, द्वारा अनुपम अतिशय हो।
जिनपद में हम शीष झुकाते, मम् प्रभात मंगलमय हो।।1।।

नमते देवों के मुकुटों की, मणियों की कांति से युक्त।
चरण कमल द्वय शोभित होते, दुरित कर्म से हुए विमुक्त।।
नाभिनंदन अजितनाथ जिन, संभव जिनकी जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरंतर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।2।।

छत्र त्रय से शोभित होते, द्युरते हुए चँवर संयुक्त।
अभिनंदन जिन मुनिसुव्रत जिन, स्वर्णमयी कांति से युक्त।।
अरुणमणि सम शोभित होते, पद्म प्रभु की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।3।।

कदली दल सम हरित वर्णमय, श्री सुपार्श्व जिनवर का रूप।
ढका हुआ ज्यों बर्फ से हिमगिरि, चन्द्रप्रभु का है स्वरूप।।
श्वेत वर्ण स्फटिक मणीसम, पुष्पदंत की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।4।।

तप्त स्वर्ण सम कांति वाले, शीतलनाथ जिनेन्द्र स्वामी।
दुरित कर्म वसु नष्ट किए हैं, श्रेयांसनाथ मोक्षगामी।।
बंधूक पुष्प सम अरुण मनोहर, वासुपूज्य की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।5।।

उद्दण्ड दर्पमय गज के मद को, विमलनाथ जिन नाश किए।
स्थिर मन करके अनंत जिन, सुख अनंत में वास किए।।
दुष्ट कर्म मल रहित जिनेश्वर, धर्मनाथ की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।6।।

देवामरी वृक्ष के फूलों, जैसे शोभित शांतिनाथ।
दयारूप गुण के आभूषण से, भूषित श्री कुंथुनाथ।।
देवों के भी देव जिनेश्वर, अरहनाथ की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।7।।

मोह मल्ल के मद का भंजन, करते हैं श्री मल्लिनाथ।
सत् शासन युत मुनि सुव्रतजी, झुका रहे हम चरणों माथ।।
त्यागा राज्य संपदा वैभव, नमिनाथ की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।8।।

तरु तमाल के पुष्पों सम हैं, नेमिनाथ की कांति महान्।
जीते हैं उपसर्ग घोर अति, श्री जिन पार्श्वनाथ भगवान।।
स्याद्वाद सूक्ति मणि दर्पण, वर्द्धमान की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।9।।

धवल नील अरु हरित लाल रंग, पीले में शोभा पाते।
वीतराग अविनाशी सुखमय, गणधरादि जिनको ध्याते।।
एक सो सत्तर एक काल के, तीर्थंकर की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो।।10।।

चौपाई

चौबीस तीर्थंकर जिनदेव, सुप्रभात नक्षत्र सुएव।
प्रतिदिन स्तुति मंगल सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय।।11।।

परम सिद्ध ऋषिवर नवदेव, सुप्रभात नक्षत्र सुएव।
श्रेय से खुश करते हैं सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय।।12।।

धर्म के आप महात्मन् एक, करते तीर्थ प्रवर्तन नेक।
भविजन जिससे सुखमय होय, मम् प्रभात मंगलमय होय।।13।।

जीवों में छाया अज्ञान, देते जिनवर सम्यक् ज्ञान।
तम को जैसे सूरज खोय, मम् प्रभात मंगलमय होय।।14।।

शुक्ल ध्यान की अग्नि माँय, कर्मों का वन दिये जलाय।
नयन कमल सम जिनके सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय।।15।।

सुनक्षत्र मंगल कल्याण, तीन लोक का करते त्राण।
शासन 'विशद' प्रभु का सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय।।16।।

।। इति सुप्रभात ।।

श्री नवदेवता स्तोत्रम्-मंगलाष्टकम्

अर्हन्त:

श्रीमन्तो जिनपाजगत्त्रयनुता, दोषैर्विमुक्तात्मका:।
लोकालोकविलोकनैक चतुराश्शुद्धा: परं निर्मला:।।
दिव्यानन्तचतुष्टयादिकयुता:, सत्यस्वरूपात्मका:।
प्राप्तायैर्भुविप्रातिहार्यविभवा:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।1।।

सिद्धा:

श्रीमन्तो नृसुरा सुरेन्द्र महिता, लोकाग्रसंवासिन:।
नित्या: सर्व सुखाकरा भयहरा, विश्वेषु कामप्रदा:।।
कर्मातीतविशुद्ध भावसहिता, ज्योति:स्वरूपात्मका:।
श्रीसिद्धाजननार्ति मृत्युरहिता:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।2।।

आचार्या:

पञ्चाचार परायणा: सुविमलाश्चारित्र संद्योतका:।
अर्हद्रू पधराश्च निस्पृहपरा:, कामादिदोषोज्झिता:।।
बाह्याभ्यन्तर संगमोहरहिता: शुद्धात्मसंराधका:।
आचार्या नरदेवपूजितपदा:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।3।।

उपाध्याया:

वेदांगं निखलागमं शुभतरं, पूर्णं पुराणं सदा।
सूक्ष्मासूक्ष्मसमस्ततत्त्वकथकं, श्री द्वादशांग शुभम्।।
स्वात्मज्ञानविवृद्धये गतमला:, येऽध्यायपन्तीश्वरा:।
निर्द्वन्द्वावरपाठका: सुविमला:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।4।।

साधव:

त्यक्त्वाशां भव भोग पुत्रतनुजां, मोहं परं दुस्त्यजं।
नि:संगाकरुणालयाश्च विरता दैगम्बरा धीधना:।।
शुद्धाचार रतानिजात्म रसिका, ब्रह्मस्वरूपात्मका।
देवेन्द्रैरपि पूजिता: सुमुनय:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।5।।

जिनधर्म:

जीवानामभयप्रद: सुसदय:, संसारदु:खापह:।
सौख्यंयोनित्तरां ददाति सकलं, दिव्यं मनोवाञ्छितम्।।
तीर्थेशैरपिधारितोद्यनुपम:, स्वर्मोक्षसंसाधक:।
धर्म:सोऽत्र जिनोदितोहितकर:, कुर्यात्सदा मंगलम्।।6।।

जिनागम

स्याद्वादांकधरं त्रिलोकमहितं, देवै: सदा संस्तुतं।
सन्देहादि विरोध भाव रहितं, सर्वार्थ सन्देशकम्।।
याथातथ्यमजेयमाप्तकथितं, कोटिप्रभाभासितं।
श्रीमज्जैनसुशासनं हितकरं, कुर्यात्सदा मंगलम्।।7।।

जिनप्रतिमा

सौम्या: सर्वविकार भावरहिता:, शान्ति स्वरूपात्मका:।
शुद्धध्यानमया: प्रशान्तवदना:, श्रीप्रातिहार्यान्विता:।।
स्वात्मानन्द विकाशकाश्च सुभगाश्चैतन्य भावावहा:।
पञ्चानांपरमेष्ठिनां हि कृतया:, कुर्वन्तु ते मंगलम्।।8।।

जिनालया:

घण्टातोरणदामधूपघटकै, राजन्ति सन्मंगलै:।
स्तोत्रैश्चित्तहरैर्महोत्सव शतै, र्वादित्र संगीत कै:।।
पूजारम्भ महाभिषेक यजनै: पुण्योत्करै: सत्क्रियै:।
श्रीचैत्यायतनानितानि कृतिनां, कुर्वन्तु सन्मंगलम्।।9।।

निखिल नव देवता

इत्थंमंगलदायका जिनवरा:, सिद्धाश्च सूर्यादया:।
पूज्यास्ता नव देवता अघहरास्तीर्थोत्तमास्तारका:।।
चारित्रोज्वलतांविशुद्ध शमतां, बोधिं समाधिं तथा।
श्री जैनेन्द्र 'सुधर्म' मात्मसुखदं, कुर्वन्तु सन्मंगलम्।।10।।

इति वीतराग तपोमूर्ति स्व. आचार्य 'श्री सुधर्मासागरजी विरचितं नव देवता स्तोत्रम्

नवदेवता स्तोत्र

-आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

तीन लोक में पूज्यनीय हैं, जिन श्रीमान् निर्मल निर्दोष।
दिव्यानन्त चतुष्टय आदिक, प्रातिहार्य वैभव के कोष।।
सत्य स्वरूपी परम आत्मशुभ, श्रीजिन छियालिस गुणधारी।
लोकालोक विलोकी अर्हत्, इस जग में मंगलकारी।।1।।

महित सुरासुर नर से पूजित, नित्य सर्व सुखकर श्रीमान्।
कर्मातीत विशुद्ध काम पद, ज्योति स्वरूपी वसु गुणवान।।
रहित जन्म-मृत्यु अर्ति से, विश्वेषु जिन भयहारी।
सिद्ध श्री लोकाग्र निवासी, इस जग में मंगलकारी।।2।।

पंचाचार परायण निष्पृह, कामादि दोषों से हीन।
विमल ज्ञान चारित्र प्रकाशक, बाह्याभ्यन्तर संग विहीन।।
परं शुद्ध आतम आराधक, जिन अर्हन्त रूपधारी।
जिनाचार नर सुर से पूजित, इस जग में मंगलकारी।।3।।

निर्मल वेद अंग शुभतर शुभ, निखिलागम् युत पूर्ण पुराण।
सूक्ष्मासूक्ष्म सर्व तत्वों का, द्वादशांग में कथन महान्।।
श्रेष्ठ विमल पंतीश्वर ध्याता, स्वात्म ज्ञान वृद्धिकारी।
उपाध्याय निर्द्वन्द सुपाठक, इस जग में मंगलकारी।।4।।

महा मोह आशा के त्यागी, करुणालय अध्यात्म स्वरूप।
पुत्र तनु भव भोग विरत धीमान् निसंग दिगम्बर रूप।।
निज आतम के रसिक श्रेष्ठ जो, ज्ञान ध्यान शुद्धाचारी।
देवेन्द्रों से पूजित मुनिवर, इस जग में मंगलकारी।।5।।

अभय प्रदायक जग जीवों का, दयावान दुःख का हर्ता।
स्वर्ग मोक्ष का साधक अनुपम, मनवांछित सुख का कर्ता।।
सकल विमल सुदिव्य तीर्थ के, अधिपति पावन हितकारी।
जिनवर कथित धर्म है पावन, इस जग में मंगलकारी।।6।।

स्याद्वाद रवि से आलोकित, सुर नर पूजित लोक महान्।
सन्देहादि दोष रहित शुभ, सर्व अर्थ संदेश प्रधान।।
याथातथ्य अजेय सुशासन, आप्त कथित है हितकारी।
कोटि प्रभा भाषित जैनागम, इस जग में मंगलकारी।।7।।

शुद्ध ध्यानमय प्रातिहार्य युत, परमेष्ठी कृत शांतिस्वरूप।
सर्व विकार भाव से वर्जित, सुभग चैतन्य भावमय रूप।।
स्वात्मानंद प्रशांत वदनमय, जिन मुद्रा है अविकारी।
सौम्य सुनिर्मल जिन प्रतिमा है, इस जग में मंगलकारी।।8।।

घंटा तोरण दाम धूप घट, राजत शत् वादित्र महान्।
पूजारंभ महोत्सव मंगल, महाभिषेक स्तोत्र प्रधान।।
महत् पुण्यकारक सत् किरिया, भवि जीवों को हितकारी।
कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्यालय, इस जग में मंगलकारी।।9।।

मंगलदायक श्री जिनवरजी, सिद्ध सूरि आदिक नवदेव।
उत्तम तीर्थ सुतारक भव से, बोधि समाधि दाता एव।।
उज्ज्वलतम् विशुद्ध समतामय, सुचरित्रमय अघहारी।
'विशद' धर्म आतम सुखदायक, इस जग में मंगलकारी।।10।।

***

श्री महावीराष्टकस्तोत्रम्

(शिखरिणी छन्दः)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि - लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग - प्रकटन - परो भानुरिव यो
महावीर - स्वामी नयन - पथगामी भवतु मे।।1।।

अताम्रं यच्चक्षुः कमल - युगलं स्पन्द - रहितं
जनान्कोपा - पायं प्रकटयति वाभ्यन्तर - मपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीर - स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।2।।

नमन्नाकेन्द्राली - मुकुटमणि - भा - जाल - जटिलं
लसत्पादांम्भोज - द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला - शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीर - स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।3।।

महावीराष्टक स्तोत्र

–आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

ज्ञानादर्श में युगपद दिखते, जीवाजीव द्रव्य सारे।
व्यय, उत्पाद, धौव्य प्रतिभाषित, अंत रहित होते न्यारे।।
जग को मुक्ती पथ प्रकटाते, रवि सम जिन अन्तर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।1।।

नयन कमल झपते नहिं दोनों, क्रोध लालिमा से भी हीन।
जिनकी मुद्रा शांत विमल है, अंतर बाहर भाव विहीन।।
क्रोध भाव से रहित लोक में, प्रगटित हैं अन्तर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।2।।

नमित सुरों के मुकुट मणि की, आभा हुई है कांतिमान।
दोनों चरण कमल की भक्ति, भक्तजनों को नीर समान।।
दुःखहर्ता सुखकर्ता जग में, जन–जन के अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।3।।

हर्षित मन होकर मेढ़क ने, जिन पूजा के भाव किए।
क्षण में मरकर गुण समूह युत, देवगति अवतार लिए।।
क्या अतिशय नर भक्ति आपकी, करके हो अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।4।।

स्वर्ण समा तन को पाकर भी, तन से आप विहीन रहे।
पुत्र नृपति सिद्धारथ के हैं, फिर भी तन से हीन रहे।।

यदर्चा – भावेन प्रमुदित – मना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण – गण – समृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव सुख – समाजं किमु तदा
महावीर – स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।4।।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत – तनुर्ज्ञान – निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति – वर सिद्धार्थ – तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत – भव – रागोऽद्भुत – गतिर्
महावीर – स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।5।।

यदीया वाग्गङ्गा विविध – नय – कल्लोल – विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभि – र्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध–जन–मरालैः परिचिता
महावीर–स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।6।।

अनिर्वारोद्रेकस्, त्रिभुवन–जयी काम–सुभटः
कुमारावस्थाया–, मपि निज–बलाद्येन विजितः।
स्फुरन्–नित्यानन्द, प्रशम–पद–राज्याय स जिनः
महावीर–स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।7।।

महामोहातङ्क–, प्रशमनपराकस्मिक–भिषङ्
निरापेक्षो बन्धु–, र्विदित–महिमा मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां, भव–भयभृता–मुत्तमगुणो,
महावीर–स्वामी नयन पथगामी भवतु मे।।8।।

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्।।9।।

।। इति श्रीमहावीराष्टकस्तोत्रम्।।

राग-द्वेष से रहित आप हैं, श्री युत हैं अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।5।।

जिनके वचनों की गंगा शुभ, नाना नय कल्लोल विमल।
महत् ज्ञान जल से जन-जन को, प्रच्छालित कर करे अमल।।
बुधजन हंस सुपरिचित होकर, बन जाते अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।6।।

तीन लोक में कामबली पर, विजय प्राप्त करना मुश्किल।
लघु वय में अनुपम निज बल से, विजय प्राप्त कर हुए विमल।।
सुख शांति शिव पद को पाकर, आप हुए अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।7।।

महामोह के शमन हेतु शुभ, कुशल वैद्य हो आप महान्।
निरापेक्ष बंधु हैं सुखकर, उत्तम गुण रत्नों की खान।।
भव भयशील साधुओं को हैं, शरण भूत अन्तर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम नयनों के पथगामी।।8।।

दोहा

भागचंद भागेन्दु ने, भक्ति भाव के साथ।
महावीर अष्टक लिखा, झुका चरण में माथ।।
पढ़े सुने जो भाव से, श्रेष्ठ गति को पाय।
भाषा पढ़के काव्य की, 'विशद' वीर बन जाय।।

***

महावीराष्टक स्तोत्र भाषा

चेतन अचेतन तत्त्व जेते, हैं अनन्त जहान में।
उत्पादव्ययध्रुवमय मुकुरवत्, लसत जाके ज्ञान में।।
जो जगतदरशी जगत में, सन्मार्गदर्शक रवि मनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।1।।

टिमिकार बिन जुग कमललोचन, लालिमा से रहित हैं।
बाह्य अन्तर की क्षमा को, भविजनों से कहत हैं।।
अति परम पावन शान्त मुद्रा, तासु तन उज्ज्वल घनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।2।।

जिहि स्वर्गवासी विपुलसुरपति, नम्रतन ह्वै नमत है।
तिन मुकुटमणि के प्रभामण्डल, पद्मपद में लसत है।।
जिन मात्र सुमरनरूप जल से, हनै भव आतप घनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।3।।

मन मुदित ह्वै मण्डूक ने, प्रभु-पूजवे मनसा करी।
तत्छन लही सुर सम्पदा, बहुरिद्धि गुणनिधि सों भरी।।
जिहि भक्तिसों सद्भक्तजन लहँ, मुक्तिपुर को सुख घनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।4।।

कंचन तपतवत ज्ञाननिधि हैं, तदपि तन वर्जित रहें।
जो हैं अनेक तथापि इक, सिद्धार्थ सुत भव रहित हैं।।

जो वीतरागी गति रहित हैं, तदपि अद्भुत गतिपनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।5।।

जिनकी वचनमय अमर सुरसुरि, विविधनय लहरें धरे।
जो पूर्णज्ञान स्वरूप जल से, नहन भविजन को करे।।
तामें अजों लँघि घने पण्डित, हँस ही सोहत मनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।6।।

जाने जगत की जन्तुजनिता, करी स्ववश तमाम है।
है वेग जाको अमिट ऐसो, विकट अतिभट काम है।।
ताकों स्वबल से प्रौढ़-वय में, शान्ति शासन हित हनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।7।।

भयभीत भवतें साधु जनको, शरण उत्तम गुण भरे।
नि:स्वार्थ के ही जगत बान्धव, विदितयश मङ्गल करे।।
जो मोहरूपी राग हनिवे, वैद्यवर अद्भुत मनो।
ते वीर स्वामी जी हमारे, नयनपथगामी बनो।।8।।

दोहा

महावीर अष्टक रच्यो, भागचन्द रुचि ठान।
पढ़ें सुनें जे भावसों, ते पावें निरबान।।
भागचन्द पण्डित महा, कियो ग्रन्थ भण्डार।
मैं मतिमित भाषा करी, शोधो सुधी सुधार।।9।।

***

भक्तामर स्तोत्र

(पद्यानुवाद – आचार्य श्री विशदसागरजी)

दोहा

वृषभनाथ बृषभेष जिन, हो वृष के अवतार।
तारण तरण जहाज तव, करो 'विशद' भवपार।।

(चौपाई)

भक्त अमर नत मुकुट छवि देय, गहन पाप तम को हर लेय।
भव सर पतित को शरण विशाल, 'विशद' नमन जिन पद नत भाल।।1।।

द्वादशांग ज्ञाता सुर देव, जिनवर की करते नित सेव।
शब्द अर्थ पद छन्द बनाय, थुति करता हूँ मैं सिरनाय।।2।।

मंद बुद्धि हूँ अति अज्ञान, करता हूँ प्रभु का गुणगान।
जल में चन्द्र बिम्ब को पाय, बालक मन को ही ललचाय।।3।।

गुणसागर प्रभु गुण की खान, सुर गुरु न कर सके बखान।
क्षुब्ध जंतु युत प्रलय अपार, सागर तैर करे को पार।।4।।

फिर भी 'विशद' भक्ति उर लाय, शक्ति हीन थुति करूँ बनाय।
हिरण शक्ति क्या छोड़ न जाय, मृगपति ढिग निज शिशु न बचाय।।5।।

मैं अल्पज्ञ हास्य को पात्र, भक्ति हेतु है पुलकित गात।
आम्रकली लख ऋतु बसंत, कोयल कुहुके कर पुलकंत।।6।।

पाप कर्म होता निर्मूल, तव थुति जो करता अनुकूल।
सघन तिमिर ज्यों रवि को पाय, क्षण में शीघ्र नष्ट हो जाय।।7।।

थुति करता हूँ मैं मति मंद, मन हरता मन्त्रों का छंद।
कमल पत्र पर जल कण जाय, ज्यों मुक्ता की शोभा पाय।।8।।

तव संस्तुति की कथा विशाल, नाम काटता कर्म कराल।
दिनकर रहें बहुत ही दूर, कमल खिलाता सर में पूर।।9।।

भवि थुतिकर तुम सम हो जाय, या में क्या अचरज कहलाय?
आश्रित करें न आप समान, ऐसे प्रभु का क्या सम्मान ?।।10।।

नयन आपके तन को देख, और नहीं फिर लगते नेक।
क्षीर नीर जो करता पान, क्षार नीर क्यों करे पुमान ?।।11।।

प्रभु तुम शांत मनोहर रूप, परमाणु सम्पूर्ण अनूप।
तुम सा नहीं है जग में कोय, दर्शन की अभिलाषा होय।।12।।

तव अनुपम मुख है भगवान, निरुपम है अति शोभामान।
चन्द्रकांति दिन में छिप जाय, तब मुख शोभा निशदिन पाय।।13।।

'विशद' गुणों के प्रभु भण्डार, तीन लोक को करते पार।
एक नाथ हो आश्रयवान, उन विचरण को रोके आन।।14।।

अचल चलावें प्रलय समीर, मेरु न हिलता हो अतिधीर।
सुर तिय न कर सके विकार, मन प्रभु का स्थिर अविकार।।15।।

जले तेल बाती बिन श्वांस, त्रिभुवन का प्रभु करें प्रकाश।
दीप धूप बिन जलता जाय, तूफां उसको बुझा न पाय।।16।।

ग्रसे राहु न होते अस्त, प्रभु जी रवि से अधिक प्रशस्त।
मेघ ढकें न अती प्रकाश, ज्ञान भानु हो अद्भुत खास।।17।।

उदित नित्य मुख जो तम हार, मेघ राहु से है विनिवार।
सौम्य मुखाम्बुज चन्द्र समान, लोक प्रकाशी कांति महान।।18।।

तमहर तव मुख चन्द्र महान, कहाँ करे निशदिन शशिभान।
खेत में ज्यों पक जाये धान, जलधर वर्षा है निष्काम।।19।।

शोभे ज्ञान तुम्हारे पास, हरि हर में न उसका वास।
कांति महामणि में जो होय, कम्ब में होती क्या वह सोय ?।।20।।

देखे हरि हरादि कई देव, तुम से आज मिले जिनदेव।
श्रद्धा हृदय जगी तव पाय, अन्य देव अब नहीं सुहाय।।21।।

सतनारी सत सुत उपजाय, तुम समान कोई न पाय।
रवि का पूरब में अवतार, तारागण के कई आधार।। 22 ।।

तुमको परम पुरुष मुनि माने, तमहर अमल सूर्यसम जाने।
मृत्युंजय हो प्रभु को पाय, शरण छोड़ जन जगत भ्रमाय।।23।।

भोगाव्यय असंख्य विभु ईश्वर, अचिन्त्य आद्य ब्रह्मा योगीश्वर।
अनेक ज्ञानमय अमल अनंत, कामकेतु इक कहते संत।।24।।

बुध विबुधार्चित बुद्ध महान, शंकर सुखकारी भगवान।
ब्रह्मा शिवपथ दाता नाथ, सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम साथ ।।25।।

त्रिभुवन दुखहर तुम्हें प्रणाम, भूतल भूषण तुम्हें प्रणाम।
त्रिभुवन स्वामी तुम्हें प्रणाम, भवसर शोषक तुम्हें प्रणाम।।26।।

शरण में आये सब गुण आन, विस्मय क्या कोई मिला न थान ?
मुख न देखें स्वप्न में दोष, सारे जग में प्रभु निर्दोष।।27।।

तरु अशोक तल में भगवान, उज्ज्वल तन अति शोभामान।
मेघ निकट दिनकर के होय, उस भांति दिखते प्रभु सोय।।28।।

मणिमय सिंहासन पर देव, तव तन शोभे स्वर्णिम एव।
रवि का उदयाचल पर रूप, उदित सूर्य सम दिखे स्वरूप।।29।।

ढुरते चामर शुक्ल विशेष, स्वर्णिम शोभित है तव भेष।
ज्यों मेरु पर बहती धार, स्वर्णमयी पर्वत मनहार।।30।।

तीन छत्र तिय लोक समान, मणिमय शशि सम शोभावान।
सूर्य ताप का करे विनाश, श्री जिन के गुण करे प्रकाश।।31।।

दश दिशि ध्वनि गूँजें गम्भीर, जय घोषक जिनवर की धीर।
तीन लोक में अति सुखदाय, सुयश दुन्दुभि बाजा गाय।।32।।

मंद मरुत गंधोदक सार, सुरगुरु सुमन अनेक प्रकार।
दिव्य वचन श्री मुख से खिरें, पुष्प वृष्टि नभ से ज्यों झरें ।।33।।

त्रिजग कांति फीकी पढ़ जाय, भामण्डल की शोभा पाय।
चन्द्र कांति सम शीतल होय, सारे जग का आतप खोय।।34।।

स्वर्ग मोक्ष की राह दिखाय, द्रव्य तत्व गुण को प्रगटाय।
दिव्य ध्वनि है 'विशद' अनूप, ॐकार सब भाषा रूप।।35।।

भवि जीवों का हो उपकार, प्रभु इच्छा बिन करें विहार।
जहँ जहँ प्रभु के पग पढ़ जायँ, तहँ तहँ पंकज देव रचायँ।।36।।

धर्म कथन में आप समान, अन्य देव न पाते आन।
तारा रवि की द्युति क्या पाय ? वैभव देव न अन्य लहाय।।37।।

गण्डस्थल मद जल से सने, गीत गूँजते अतिशय घने।
मत्त कुपित होकर गज आय, फिर भी भक्त नहीं भय खाय।।38।।

भिदे कुम्भ गज मुक्ता द्वारा, हो भूषित भू भाग ही सारा।
तव भक्तों का केहरि आन, न कर सके जरा भी हान।।39।।

प्रलय पवन अग्नि घन-घोर, उठें तिलंगे चारों ओर।
जग भक्षण हेतु आक्रान्त, नाम रूप जल से हो शांत।।40।।

काला नाग कुपित हो जाय, तो भी निर्भयता को पाय।
हाथ में नाग दमन ज्यों पाय, भक्त आपका बढ़ता जाय।। 41 ।।

हय गय भयकारी रव होय, शक्तीशाली नृप दल सोय।
नाश होय कर प्रभु यशगान, रवि ज्यों करे तिमिर की हान ।।42।।

भाला गज के सिर लग जाय, सिर से रक्त की धार बहाय।
रण में दास विजय तव पाय, दुर्जय शत्रु भी आ जाय।।43।।

क्षुब्ध जलधि बड़वानल होय, मकरादिक भयकारी सोय।
करें आपका जो भी ध्यान, पार करें निर्भय हो थान।।44।।

रोग जलोदर होवे खास, चिन्तित दशा तजी हो आस।
अमृत प्रभु पद रज सिर नाय, मदन रूपता को वह पाय।।45।।

सांकल से हो बद्ध शरीर, खून से लथपत होवे पीर।
नाम मंत्र तव जपते लोग, शीघ्र बंध का होय वियोग।।46।।

गज अहि दव रण बंधन रोग, मृग भय सिंधु का संयोग।
सारे भय भी हों भयभीत, थुति प्रभु की जो करें विनीत।।47।।

विविध पुष्प जिनगुण की माल, प्रभु की संस्तुती रची विशाल।
कंठ में धारण जो कर लेय, मानतुंग सम लक्ष्मी सेय।।48।।

दोहा – मानतुंग की कृति का, भाषा मय अनुवाद।
विशद शांति आनन्द का, भोग करे कर याद।।

***

तत्त्वार्थसूत्रम्

(श्री उमास्वामी आचार्य विरिचतम्)

(अनुष्टुप् छन्द)

मोक्ष-मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभू-भृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुण-लब्धये।।

(आर्यगीतिका)

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं, नवपदसहितं जीव षट्कायलेश्याः
पञ्चान्ये चास्तिकाया, व्रतसमिति-गतिज्ञानचारित्रभेदाः।
इत्येतन्मोक्षमूलं, त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्धधाति, स्पृशति च मतिमान्, यः सवैशुद्धदृष्टिः।।1।।

सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउव्विहाराहणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते, वोच्छं आराहणा कमसो।।2।।

उज्जोवणमुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसणणाणचरित्तं, तवाणमाराहणा भणिया।।3।।

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।।1।। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।2।। तन्निसर्गादधिगमाद्वावा।।3।। जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।।4।। नाम-स्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः।।5।। प्रमाणनयैरधिगमः।।6।। निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः।।7।। सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन-कालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च।।8।। मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम्।।9।। तत्प्रमाणे।।10।। आद्ये

परोक्षम्।।11।। प्रत्यक्षमन्यत्।।12।। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।।13।। तदिन्द्रियानिन्द्रिय-निमित्तम्।।14।। अवग्रहेहावायधारणाः।।15।। बहुबहुविधक्षिप्रानिः सृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्।।16।। अर्थस्य।।17।। व्यञ्जन-स्यावग्रहः।।18।। न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्।।19।। श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम्।।20।। भवप्रत्ययोऽवधिर्देव नारकाणाम्।।21।। क्षयोपशमनिमित्तः षड् विकल्पः शेषाणाम्।।22।। ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः।।23।। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः।।24।। विशुद्धिक्षेत्र - स्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्याययोः।।25।। मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु।।26।। रूपिष्ववधेः।।27।। तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य।।28।। सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।।29।। एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।।30।। मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च।।31।।सदसतोर-विशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।।32।। नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द-समभिरुढैवंभूतानयाः।।33।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) प्रथमोऽध्यायः।।1।।

द्वितीय अध्याय

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिकपारिणामिकौ च।।1।। द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्।।2।। सम्यक्त्वचारित्रे।।3।। ज्ञानदर्शनदानलाभ-भोगोपभोगवीर्याणि च।।4।। ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध-यश्चतुस्त्रित्रि पंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च।।5।। गतिकषायलिङ्ग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकै कै कै कषड् भेदाः।।6।। जीवभव्याभव्यत्वानि च।।7।। उपयोगो लक्षणम्।।8।। स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः।।9।। संसारिणो मुक्ताश्च।।10।। समनस्कामनस्काः।।11।। संसारिणस्त्र-सस्थावराः।।12।।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।।13 ।। द्वीन्द्रियादयस्–त्रसाः ।।14 ।। पञ्चेन्द्रियाणि ।।15 ।। द्विविधानि ।।16 ।। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम ।।17 ।। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।।18 ।। स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ।।19 ।। स्पर्शरसगन्धवर्ण–शब्दास् तदर्थाः ।।20 ।। श्रुतमनिन्द्रियस्य ।।21 ।। वनस्पत्यन्तानामेकम् ।।22 ।। कृमिपिपीलिकाभ्रमर–मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।।23 ।। सञ्ज्ञिनः समनस्काः ।।24 ।। विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।25 ।। अनुश्रेणि गतिः ।।26 ।। अविग्रहा जीवस्य ।।27 ।। विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ।।28 ।। एकसमयाऽविग्रहा ।।29 ।। एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः ।।30 ।। सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ।।31 ।। सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।।32 ।। जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ।।33 ।। देवनारकाणामुपपादः ।।34 ।। शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ।।35 ।। औदारिकवैक्रिय–काहारक–तैजसकार्मणानि शरीराणि ।।36 ।। परं परं सूक्ष्मम् ।।37 ।। प्रदेश–तोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।38 ।। अनन्तगुणे परे ।।39 ।। अप्रतीघाते ।।40 ।। अनादिसंबन्धे च ।।41 ।। सर्वस्य ।।42 ।। तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।43 ।। निरुपभोगमन्त्यम् ।।44 ।। गर्भसम्मूर्च्छनज–माद्यम् ।।45 ।। औपपादिकं वैक्रियिकम् ।।46 ।। लब्धिप्रत्ययं च ।।47 ।। तैजसमपि ।।48 ।। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।।49 ।। नारक सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ।।50 ।। न देवाः ।।51 ।। शेषास् त्रिवेदाः ।।52 ।। औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।।53 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) द्वितीयोऽध्यायः ।।2 ।।

तृतीय अध्याय

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयो घनाम्बुवाता–काशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ।।1 ।। तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदश–

दशत्रिपंचोनैकनरक–शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ।।2 ।। नारका नित्याशुभतरलेश्या परिणामदेहवेदनाविक्रियाः ।।3 ।। परस्परोदीरितदुःखाः ।।4 ।। संक्लिष्टा–सुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ।।5 ।। तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्र–यस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ।।6 ।। जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।।7 ।। द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलया–कृतयः ।।8 ।। तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।9 ।। भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।।10 ।। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिम–वन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ।।11 ।। हेमार्जुनतपनीयवैडूर्य्यरजतहेममयाः ।।12 ।। मणिविचित्र–पार्श्वा उपरिमूले च तुल्यविस्ताराः ।।13 ।। पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ।।14 ।। प्रथमो योजनसहस्रायामस् तदर्द्ध विष्कम्भो ह्रदः ।।15 ।। दशयोजनावगाहः ।।16 ।। तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।17 ।। तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ।।18 ।। तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्ति–बुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ।।19 ।। गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्ता–सीतासीतो–दानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्य–गाः ।।20 ।। द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ।।21 ।। शेषास्त्वपरगाः ।।22 ।। चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ।।23 ।। भरतः षड् विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ।।24 ।। तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ।।25 ।। उत्तरादक्षिणतुल्याः ।।26 ।। भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यव–सर्पिणीभ्याम् ।।27 ।। ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ।।28 ।। एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतक–हारिवर्षक–

दैवकुरवकाः ।।29 ।। तथोत्तराः ।।30 ।। विदेहेषुसंख्येयकालाः ।।31 ।। भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशत भागः ।।32 ।। द्विर्धातकीखण्डे ।।33 ।। पुष्करार्द्धे च ।।34 ।। प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।।35 ।। आर्या म्लेच्छाश्च ।।36 ।। भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।।37 ।। नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।।38 ।। तिर्यग्योनिजानां च ।।39 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) तृतीयोऽध्यायः ।।3 ।।

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।1 ।। आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।।2 ।। दशाष्टपञ्च-द्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।।3 ।। इन्द्र-सामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्ण-काभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ।।4 ।। त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ।।5 ।। पूर्वयो-र्द्वीन्द्राः ।।6 ।। कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ।।7 ।। शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ।।8 ।। परेऽप्रवीचाराः ।।9 ।। भवनवासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि- वातस्त-नितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।।10 ।। व्यन्तराः किन्नर-किंपुरुषमहोरग-गन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ।।11 ।। ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ।।12 ।। मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ।।13 ।। तत्कृतः कालविभागः ।।14 ।। बहिरवस्थिताः ।।15 ।। वैमानिकाः ।।16 ।। कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।।17 ।। उपर्युपरि ।।18 ।। सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्रशतार - सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।।19 ।। स्थितिप्रभाव-सुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ।।20 ।।

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ।।21 ।। पीतपद्मशुक्ल-लेश्या द्वित्रिशेषषु ।।22 ।। प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ।।23 ।। ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ।।24 ।। सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोय-तुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ।।25 ।। विजयादिषु द्विचरमाः ।।26 ।। औप-पादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ।।27 ।। स्थितिरसुरनागसुपर्ण-द्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीन-मिताः ।।28 ।। सौधर्मै-शानयोः सागरोपमे अधिके ।।29 ।। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ।।30 ।। त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ।।31 ।। आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ।।32 ।। अपरा पल्योपममधिकम् ।।33 ।। परतःपरतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ।।34 ।। नारकाणां च द्वितीयादिषु ।।35 ।। दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ।।36 ।। भवनेषु च ।।37 ।। व्यन्तराणां च ।।38 ।। परा पल्योपममधिकम् ।।39 ।। ज्योतिष्काणां च ।।40 ।। तदष्टभागोऽपरा ।।41 ।। लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।।42 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) चतुर्थोऽध्यायः ।।4 ।।

पंचम अध्याय

अजीवकायाधर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।।1 ।। द्रव्याणि ।।2 ।। जीवाश्च ।।3 ।। नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।।4 ।। रूपिणः पुद्गलाः ।।5 ।। आ आकाशादेकद्रव्याणि ।।6 ।। निष्क्रियाणि च ।।7 ।। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ।।8 ।। आकाशस्यानन्ताः ।।9 ।। संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।।10 ।। नाणोः ।।11 ।। लोकाकाशेऽवगाहः ।।12 ।। धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।।13 ।। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ।।14 ।। असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ।।15 ।। प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।।16 ।। गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।।17 ।।

आकाशस्यावगाहः ।।18 ।। शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ।।19 ।। सुखदुःखजीवित–मरणोपग्रहाश्च ।।20 ।। परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।।21 ।। वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ।।22 ।। स्पर्शरसगन्धवर्ण–वन्तः पुद्गलाः ।।23 ।। शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्य संस्थानभेदतमश्–छायातपोद्योतवन्तश्च।।24 ।। अणवः स्कन्धाश्च ।।25 ।। भेद–सङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ।।26 ।। भेदादणुः ।।27 ।। भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ।।28 ।। सद् द्रव्यलक्षणम् ।।29 ।। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।।30 ।। तद्भावाव्ययं नित्यम् ।।31 ।। अर्पितानर्पितसिद्धेः ।।32 ।। स्निग्ध–रूक्षत्वाद्बन्धः ।।33 ।। न जघन्यगुणानाम् ।।34 ।। गुणसाम्ये सदृशानाम् ।।35 ।। द्व्यधिकादिगुणानां तु ।।36 ।। बन्धेऽधिकौ परिणामिकौ च ।।37 ।। गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ।।38 ।। कालश्च ।।39 ।। सोऽनन्तसमयः ।।40 ।। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।।41 ।। तद्भावः परिणामः ।।42 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) पञ्चमोऽध्यायः ।।5 ।।

षष्ठम् अध्याय

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ।।1 ।। स आस्रवः ।।2 ।। शुभः पुण्य–स्याशुभः पापस्य ।।3 ।। सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।।4 ।। इन्द्रियकषाया–व्रतक्रियाः पञ्च चतुः पञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ।।5 ।। तीव्रमन्द–ज्ञाताज्ञात–भावाधिकरण–वीर्यविशेषेभ्य–स्तद्विशेषः ।।6 ।। अधिकरणं जीवाजीवाः ।।7 ।। आद्यं संरम्भसमा–रम्भारम्भयोगकृ तकारितानुमत–कषायविशेषै–स्त्रिस्त्रिस्त्रिश्–चतुश्चैकशः ।।8 ।। निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ।।9 ।। तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तराया–सादनोपघाता ज्ञानदर्शना–वरणयोः ।।10 ।। दुःखशोकतापाक्रन्दन – वधपरिदेव – नान्यात्म – परोभय–स्थानान्यसद्वेद्यस्य ।।11 ।। भूतव्रत्यनुकम्पादा नसराग संयमादियोगः क्षान्तिः

शौचमिति सद्वेद्यस्य ।।12 ।। केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्ण–वादो दर्शनमोहस्य ।।13 ।। कषायोदया–त्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ।।14 ।। बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ।।15 ।। माया तैर्यग्योनस्य ।।16 ।। अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ।।17 ।। स्वभावमार्दवं च ।।18 ।। निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।।19 ।। सरागसंयमसंयमा–संयमाकामनिर्जराबाल तपांसि दैवस्य ।।20 ।। सम्यक्त्वं च ।।21 ।। योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।।22 ।। तद्विपरीतं शुभस्य ।।23 ।। दर्शनविशुद्धिर्विनय–संपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचा–रोऽभीक्ष्ण–ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्याग–तपसीसाधु–समाधिर्वैयावृत्यकरण महदाचार्य–बहुश्रुतप्रवचनभक्ति–रावश्यकापरिहाणिर्मार्ग–प्रभावना–प्रवचन–वत्सल–त्वमितितीर्थ–करत्वस्य ।।24 ।। परात्मनिन्दाप्रशंसे सद–सद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।।25 ।। तद्विपर्ययो नीचै–र्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ।।26 ।। विघ्नकरणमन्तरायस्य ।।27 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) षष्ठोऽध्यायः ।।6 ।।

सप्तम अध्याय

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरति र्व्रतम् ।।1 ।। देशसर्वतो–ऽणुमहती ।।2 ।। तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।।3 ।। वाङ्मनोगुप्ती–र्यादाननिक्षेपणसमित्या–लोकितपानभोजनानि पञ्च ।।4 ।। क्रोधलोभ–भीरुत्वहास्यप्रत्याख्याना–न्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ।।5 ।। शून्यागार विमोचितावासपरोपरोधाकरण–भैक्ष्यशुद्धिसधर्मावि–संवादाः पञ्च ।।6 ।। स्त्रीराग–कथाश्रवणतन्मनोहराङ्ग–निरीक्षण–पूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्ट–रसस्वशरीर संस्कारत्यागाः पञ्च ।।7 ।। मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषय–रागद्वेषवर्जनानि पञ्च ।।8 ।। हिंसादिष्विहामुत्रा–पायावद्यदर्शनम् ।।9 ।। दुःखमेव वा ।।10 ।। मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणा–

धिकक्लिश्य-मानाविनयेषु ।।11 ।। जगत्कायस्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ।।12 ।। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।।13 ।। अस-दभिधानमनृतम् ।।14 ।। अदत्तादानं स्तेयम् ।।15 ।। मैथुनमब्रह्म ।।16 ।। मूर्छा परिग्रहः ।।17 ।। निःशल्यो व्रती ।।18 ।। आगार्यनगारश्च ।।19 ।। अणुव्रतोऽगारी ।।20 ।। दिग्देशानर्थदण्ड- विरतिसामायिकप्रोषधोप-वासोपभोग-परिभोगपरिमाणा-तिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।।21 ।। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।।22 ।। शङ्का-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ।।23 ।। व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ।।24 ।। बन्ध-वधच्छेदातिभारारोपणान्न-पान-निरोधाः।।25 ।। मिथ्योपदेशरहोभ्या-ख्यानकूटलेख-क्रियान्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ।।26 ।। स्तेनप्रयोगतदा-हृतादान-विरुद्धराज्या-तिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ।।27 ।। परविवाह-क रणे त्वरिका परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा काम-तीव्राभिनिवेशाः ।।28 ।। क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदासकुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ।।29 ।। ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्य-तिक्रम-क्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तरा-धानानि ।।30 ।। आनयनप्रेष्यप्रयोग-शब्दरूपानु पातपुद्गलक्षेपाः ।।31 ।। कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्या-समीक्ष्याधि-करणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ।।32 ।। योगदुःप्रणिधा नानादर-स्मृत्यनु-पस्थानानि ।।33 ।। अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गा-दान-संस्तरोप-क्र मणानादर-स्मृत्य-नुपस्थानानि ।।34 ।। सचित्त-सम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुः पक्वाहाराः ।।35 ।। सचित्तनिक्षेपा-पिधानपरव्यपदेशमात्सर्य्य-कालातिक्रमाः ।।36 ।। जीवितमरणा-शंसामित्रानुरागसुखानुबन्ध-निदानानि ।।37 ।। अनुग्रहार्थं स्वस्याति-सर्गो दानम् ।।38 ।। विधिद्रव्य-दातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः ।।39 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) सप्तमोऽध्यायः ।।7 ।।

अष्टम अध्याय

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादः-कषाययोगा बन्धहेतवः ।।1 ।। सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।।2 ।। प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास् तद्विधयः ।।3 ।। आद्यो ज्ञानदर्शनावरण वे दनीयमो हनीयायु र्नाम-गो त्रान्तरायाः ।।4 ।। पञ्चनवद्व्यष्टा विंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ।।5 ।। मतिश्रुता वधिमनः पर्ययकेवलानाम् ।।6 ।। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा निद्रा-निद्रा-प्रचला-प्रचला-प्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ।।7 ।। सदसद्वेद्ये ।।8 ।। दर्शनचारित्र-मोहनीयत्कषाय-कषायवेदनीयाख्यास्-त्रिद्विनवषोडश भेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्वतदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्यरत्य-रतिशोकभयजुगुप्सा-स्त्रिपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानु-बन्ध्य-प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध मानमायालोभाः ।।9 ।। नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।।10 ।। गति-जातिशरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माणबन्धन-सङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्श-रसगन्धवर्णानुपूर्व्या-गुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायो गतयः प्रत्येक शरीरत्रससुभगसुस्वरशुभ-सूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरा-देययशः कीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ।।11 ।। उच्चैर्नीचैश्च ।।12 ।। दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।।13 ।। आदितस्ति-सृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम्-कोटीकोट्यः परा स्थितिः ।।14 ।। सप्तति-र्मोहनीयस्य ।।15 ।। विंशतिर्नामगोत्रयोः ।।16 ।। त्रयस्त्रिंशत्सागरो-पमाण्यायुषः ।।17 ।। अपरा द्वादशमुहूर्त्ता वेदनीयस्य ।।18 ।। नाम-गोत्रयोरष्टौ ।।19 ।। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ।।20 ।। विपाकोऽनुभवः ।।21 ।। स यथानाम् ।।22 ।। ततश्च निर्जरा ।।23 ।। नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्व-नन्तानन्तप्रदेशाः ।।24 ।। सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।।25 ।। अतोऽन्यत्पापम् ।।26 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) अष्टमोऽध्याय ।।8 ।।

नवम अध्याय

आस्रवनिरोधः संवरः ।।1 ।। स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा–परीषहजय चारित्रैः ।।2 ।। तपसा निर्जरा च ।।3 ।। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।।4 ।। ईर्याभाषैषणा–दाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।।5 ।। उत्तमक्षमा–मार्दवार्जव–शौचसत्यसंयम–तपस्यागाकिञ्चन्य–ब्रह्मचर्याणि धर्मः ।।6 ।। अनित्याशरण–संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव–संवरनिर्जरालोक बोधिदुर्लभ–धर्मस्वाख्या–तत्त्वानुचिन्तन–मनुप्रेक्षाः ।।7 ।। मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।।8 ।। क्षुत्पिपासाशीतोष्ण–दंशमशक–नाग्न्यारति–स्त्री–चर्या–निषद्या–शय्या–क्रोश–वध–याचनालाभ–रोगतृणस्पर्श–मलसत्कारपुरस्कार–प्रज्ञाज्ञाना–दर्शनानि ।।9 ।। सूक्ष्मसाम्प–रायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ।।10 ।। एकादश जिने ।।11 ।। बादरसाम्पराये सर्वे ।।12 ।। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।।13 ।। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।।14 ।। चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्या–क्रोशयाचनासत्कार–पुरस्काराः ।।15 ।। वेदनीये शेषाः ।।16 ।। एकादयो भाज्यायुगपदेकस्मिन्नै–कोनविंशतेः ।।17 ।। सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहार–विशुद्धि–सूक्ष्मसाम्परायथाख्यात–मिति चारित्रम् ।।18 ।। अनशनाव–मौदर्यवृत्तिपरिसंख्यान–रस–परित्याग–विविक्तशय्यासन–कायक्लेशा बाह्यं तपः ।।19 ।। प्रायश्चित्तविनय–वैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग–ध्यानान्युत्तरम् ।।20 ।। नवचतुर्दश–पञ्च–द्विभेदा यथा–क्रमं प्राग्ध्यानात् ।।21 ।। आलोचना–प्रतिक्रमण–तदुभयविवेकव्युत्सर्ग–तपश्छेदपरिहारोप–स्थापनाः ।।22 ।। ज्ञानदर्शन–चारित्रो–पचाराः ।।23 ।। आचार्यो–पाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लान–गणकुलसङ्ग–साधुमनोज्ञानाम् ।।24 ।। वाचना–पृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मो–पदेशाः ।।25 ।। बाह्याभ्यन्त–रोपध्योः ।।26 ।। उत्तमसंहननस्यैका–ग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।।27 ।। आर्त्तरौद्रधर्म्य–शुक्लानि ।।28 ।। परे मोक्षहेतू ।।29 ।। आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय

स्मृतिसमन्वाहारः ।।30 ।। विपरीतं मनोज्ञस्य ।।31 ।। वेदनायाश्च ।।32 ।। निदानं च ।।33 ।। तदविरतदेशविरत–प्रमत्तसंयतानाम् ।।34 ।। हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो–रौद्र–मविरतदेशविरतयोः ।।35 ।। आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ।।36 ।। शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ।।37 ।। परे केवलिनः ।।38 ।। पृथक्त्वैकत्व–वितर्कसूक्ष्म–क्रियाप्रतिपाति–व्युपरत क्रिर्या–निवर्तीनि ।।39 ।। त्र्येकयोगकाय–योगायोगानाम् ।।40 ।। एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ।।41 ।। अवीचारं द्वितीयम् ।।42 ।। वितर्कःश्रुतम् ।।43 ।। वीचारोऽर्थ व्यञ्जनयोग–संक्रान्तिः ।।44 ।। सम्यग्दृष्टि–श्रावकविरतानन्तवियोजक–दर्शनमोहक्षपकोपशम–कोपशान्तमोह क्षपक क्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुण–निर्जराः ।।45 ।। पुलाक–वकुशकुशील–निर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ।।46 ।। संयमश्रुतप्रति–सेवनातीर्थ–लिङ्गलेश्योपपाद–स्थानविकल्पतः साध्याः ।।47 ।।

।।इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) नवमोऽध्यायः ।।9 ।।

दशम अध्याय

मोहक्षयाज्ज्ञान–दर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।।1 ।। बन्धहेत्वभाव–निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ।।2 ।। औपशमिकादिभव्यत्वानां च ।।3 ।। अन्यत्र केवल– सम्यक्त्वज्ञान–दर्शनसिद्धत्वेभ्यः ।।4 ।। तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ।।5 ।। पूर्वप्रयोगा–दसङ्गत्वाद्–बन्धच्छेदात् तथागति–परिणामाच्च ।।6 ।। आविद्धकुलालचक्रवद्–व्यपगतलेपालाम्बुवदेरण्डबीज–वदग्नि–शिखावच्च ।।7 ।। धर्मास्तिकाया–भावात् ।।8 ।। क्षेत्रकालगति–लिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित–ज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्प–बहुत्वतः साध्याः ।।10 ।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) दशमोऽध्यायः ।।10 ।।

दोद्यक वृत्त

अक्षर-मात्र-पदस्वर-हीनं, व्यञ्जनसंधि-विवर्जितरेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।।1।।

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः।।2।।

तत्त्वार्थ-सूत्रकर्तारं, गृद्ध-पिच्छोप-लक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजात, मुमास्वामीमुनीश्वरम्।।3।।

पढम चउक्के पढमं, पंचमए जाण पुग्गलं तच्च।
छहसत्तमे हि आस्सव, अट्ठमे बंध णायव्वो।।4।।

णवमे संवर णिज्जर, दहमे मोक्खं वियाणे हि।
इह सत्त तच्च भणियं, दह सुत्ते मुणिवरिं देहिं।।5।।

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं।।6।।

तवयरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीवदयाकरणम्।
अन्ते समाहिमरणं, चउगइ दुक्खं णिवारेई।।7।।

कोटिशतं द्वादशचैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्य, मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।8।।

अरहंत भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथिय सव्वं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।9।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः
चारित्रार्णवगम्भीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।10।।

।। इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम मोक्षशास्त्रं समाप्तम्।।

श्री सरस्वती नाम स्तोत्रम्

सरस्वत्या प्रसादेन काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चलभावेन पूजनीया सरस्वती।।1।।

श्री सर्वज्ञमुखोत्पन्ना भारती बहुभाषिणी।
अज्ञानतिमिरं हन्ति विद्याबहुविकासिनी।।2।।

सरस्वती मया दृष्टा दिव्याकमललोचना।
हंसस्कन्धसमारुढ़ा वीणापुस्तकधारिणी।।3।।

प्रथमं भारती नाम द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवि चतुर्थं हंसगामिनी।।4।।

पंचमं विदुषां माता षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं अष्टमं ब्रह्मचारिणी।।5।।

नवमं च जगन्माता दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी द्वादशं वरदा भवेत्।।6।।

वाणी त्रयोदशं नाम भाषा चैव चतुर्दशम्।
पंचदशं तु श्रुतदेवी षोडशं गोर्निगद्यते।।7।।

एतानि श्रुतनामानि प्रातरुत्थाय च पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता शारदा वरदा भवेत्।।8।।

सरस्वती नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणी।
विद्यारंभ करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा।।9।।

***

सरस्वती स्तोत्र

–आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

कोटी चन्द्र सूर्य से भी अति, उज्ज्वल दिव्य मूर्ति पावन।
धवल चांदनी से अति निर्मल, शुभ्र वस्त्र अति मनभावन।।
समतामय कामार्थ दायिनी, हंसारूढ़ दिव्य आसन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।1।।

नमित सुरासुर के मुकुटों की, मणिमय आभा कांतीमान।
सघन मंजरी से अनुरंजित, पाद पद्म हैं आभावान।।
नील अलीसम केश सुसुंदर, प्रमद हस्ति सम गगन गमन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।2।।

मुक्तामणि से निर्मित कुण्डल, हार मुद्रिका अरु केयूर।
निर्मल रत्नावलि सुसज्जित, मुकुट सुशोभित है भरपूर।।
सर्व अंग भूषण से सज्जति, नर मुनीन्द्र भी करें नमन्।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।3।।

कंकण कनक करधनी सुंदर, कंठ में शोभित कंठाहार।
नूपुर झंकृत होते अनुपम, इत्यादि शोभित उपहार।।
धर्म वारि निध की संतति को, नित प्रति करते हैं वर्धन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।4।।

कदली दल को निंदित करते, मृदुतम जिनके दोनों हाथ।
विकसित कमल समान सुमुख है, कमलासन पर शोभित नाथ।।
सब भाषामय दिव्य देशना, जिन मुख से निःसृत पावन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।5।।

अर्ध चन्द्र सम जटा सुमंडित, कला निधी सुंदर तम रूप।
धारण किए गोद में पुस्तक, जिनका चित् चैतन्य स्वरूप।।
सर्व शास्त्र का करे प्रकाशन, अजपाजाप मय शुभ आसन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।6।।

सागर फेन समान सुसुंदर शंख लिए हैं बर्फ समान।
पूर्ण चन्द्रमा सम शोभित तन, अभ्रहार ज्यों शोभावान।।
दिव्य ललाट सहित चंचल अति, हिरणी शावक समलोचन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।7।।

काम रूपिणी हे ! करणोन्नत, जगत् पूज्य तुम परम पवित्र।
नाग गरुण किन्नर के स्वामी, पूजा करते सुर नर नित्य।।
सर्व यक्ष विद्या धरेन्द्र नित 'विशद' करें तुमको वन्दन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्।।8।।

***

सरस्वती नाम स्तोत्र

–आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

सरस्वती की कृपा से मानव, करें काव्य की संरचना।
इसीलिए निश्चल भावों से, पूज्य सरस्वती को जपना।।
श्री सर्वज्ञ कथित जिनवाणी, बहु भाषामय जिनका ज्ञान।
हनन करे अज्ञान तिमिर का, विद्या का करती गुणगान।।1।।

दिव्य कमल लोचन से देवी, सरस्वती देखो हमको।
हंसारूढ़ सुपुस्तक वीणा, धारी वंदन है तुमको ।।
प्रथम भारती नाम आपका, द्वितीय सरस्वती है नाम।
तीजा नाम शारदा देवी, हंसगामिनी चौथानाम।।2।।

विदुषां माता नाम पाँचवां, वागीश्वरी है छठवां नाम।
सप्तम नाम कुमारी पावन, ब्रह्मचारिणी अष्टम नाम।।
नौवाँ नाम जगत् माता है, ब्राह्मिणी जिनका दशवां नाम
ग्यारहवां जानो ब्रह्माणी, वरदा है बारहवां नाम।।3।।

वाणी नाम कहा तेरहवां, चौदहवां है भाषा नाम।
श्रुतदेवी है नाम पंचदश, सोलहवां है गौरी नाम।।
प्रातः उठकर श्रुतदेवी के, इन सब नामों को पढ़ते।
कर देती संतुष्ट सुमाता, विद्या में आगे बढ़ते।।4।।

इच्छित वर देने वाली, हे सरस्वती ! है तुम्हें नमन्।
सिद्धि दो हमको हे माता! काम रूपिणी तुम्हे नमन्।।
विद्या का आरंभ करूँ मैं, हे ! ब्रह्माणी तुम्हे नमन्।
'विशद' ज्ञान को देने वाली, श्री जिनवाणी तुम्हें नमन्।।5।।

***

दर्शन-पाठ (संस्कृत)

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न तिष्ठति चिरं पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।।
वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभम्।
नैकजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम्।।

दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम्।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः।।
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्व मुख्याष्टगुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।
चिदानन्दैकरूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः।।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर।।
नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।
जिनेभक्तिर्जिनेभक्ति, र्जिनेभक्तिर्दिनेदिने।
सदामेऽस्तुसदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे।।
जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भूवं चक्रवर्त्यपि।
स्यांच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिन धर्मानुवासितः।।
जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम्।
जनममृत्युजरारोगो, हन्यते जिनदर्शनात।।

अद्या-भवत् सफलता नयन-द्वयस्य,
देव ! त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधि-रयं चुलुक-प्रमाणः।।

***

दर्शन-पाठ

(युगलजी)

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है।।1।।

श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से।
अधिक देर अघ नहीं रहैं जल, छिद्र सहित कर मैं जैसे।।2।।

वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मराग सम शांत-प्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा।।3।।

दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोध-प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश।।4।।

दर्शन श्री जिनेन्द्र चन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत, औ सुख वारिधि को विकसाता।।5।।

सकल तत्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्वादि गुण के सागर।
शांत दिगम्बर रूप नमूं, देवाधिदेव तुमको जिनवर।।6।।

चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमातमा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धातमा को।।7।।

अन्य शरण कोई नहीं जगत में, तुम्हीं शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश ! अन्तर्यामी।।8।।

रक्षक नहीं शरण कोई नाहीं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता।।9।।

दिन-दिन पाऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति, जिन भक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ती।।10।।

नहिं चाहूँ जिनधर्म बिना मैं, विशद चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से, सहित, दरिद्री का होना।।11।।

जन्म-जन्म के किये पाप औ, बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ जरा रोग, सब कट जाते जिनदर्शन से।।12।।

आज 'युगल' दृग हुए सफल, तुम चरण-कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक आज, लगता भवसागर चुल्लू भर।।13।।

***

दर्शन पाठ

(तर्ज : दिन रात मेरे स्वामी...)

यह भावना हमारी, प्रभु दर्श तेरे पाऊँ।
पल-पल प्रसन्न मन से, नवकार मंत्र ध्यायूँ।।

चउ घातिया करम का, जिसने किया सफाया।
अपने हृदय कमल पर, अर्हंत को बसाऊँ।। यह भावना...

नो कर्म भाव द्रव्य से, जो मुक्त हो गये हैं।
उन शुद्ध सिद्ध जिन को, मैं शीष पर बिठाऊँ।। यह भावना...

आचार पाँच पालें, पालन कराएँ सबको।
आचार्य परम गुरु को, मैं कंठ में सजाऊँ।। यह भावना...

जो अंग पूर्वधारी, पाठक मुनि पढ़ाते।
मुख के कमल बिठाकर, उनके गुणों को गाऊँ।। यह भावना...

सद्ज्ञान ध्यान तप में, खोये सदैव रहते–
उन सर्वसाधुओं को, नाभि कमल में ध्यायूँ।। यह भावना...

श्रद्धान, ज्ञान, चारित, सद्धर्म ये रतन हैं।
अहिंसा मयी धरम के, धारण में लौ लगाऊँ।। यह भावना...

वाणी जिनेन्द्र की शुभ, हितकारणी कही है।
जिनदेव की सुवाणी करके, श्रवण कराऊँ।। यह भावना...

जिन का स्वरूप जिनके, प्रतिबिम्ब में झलकता।
जिन तीर्थ वंदना कर, नित चैत्य दर्श पाऊँ।। यह भावना...

त्रैलोक्य में विराजित, जिन चैत्य अरु जिनालय।
तन, मन 'विशद' वचन से, मैं वंदना को जाऊँ।। यह भावना...

इत्याशीर्वाद

दर्शन पाठ

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

दोहा– जिन दर्शन होता भला, करता पाप विनाश।
स्वर्ग नसैनी है यही, साधन मुक्ति राश।।

जिन दर्शन गुरु वंदना, हरते जग की पीर।
कर्म झरें यों आत्म से, अंजलि पुट ज्यों नीर।
वीतराग छवि देखकर, पद्म राग सम होय।
जन्म–जन्म के कर्म को, दर्शन नाशे सोय।।

जिन सूरज के दर्श से, भव तम होवे नाश।
बोधि चित्त में पद्म सम, चउ दिश होय प्रकाश।।
दर्शन श्रीजिन चन्द्र का, धर्मामृत वर्षाय।
जन्म दाह को नाशता, सुख समुद्र बढ़ जाय।।

(बसन्ततिलका छन्द)

जीवादि तत्व प्रति पादक ज्ञानधारी,
सम्यक्त्व मुख्य वसु गुणमय निर्विकारी।
हे ! शान्त रूप जिनवर देवाधिदेव,
चरणों नमन करें हम जिनके सदैव।
अन्य शरण कोई है नहीं, मुझे शरण एक नाथ,
करो सुरक्षा जिन प्रभु, करुण भाव के साथ।
त्राता नहिं तिहुँ लोक में, त्राता नहीं है कोय,
वीतराग जिनदेव सम, तीन काल में सोय।
प्रतिदिन हमको प्राप्त हो, जिनभक्ति त्रिवार,
सदा–सदा करता रहूँ, भव–भव में हर बार।
चक्रवर्ति पद भी नहीं, दर्शन बिन हे ! नाथ,
दारिदता स्वीकार है, जिन दर्शन के साथ।
जन्म–जन्म कृत पाप भी, कोटि जन्म के होय।
जन्म–जरा अरु मृत्यु भी, दर्शन नाशे सोय।

(बसन्ततिलका छन्द)

देवाधिदेव चरणाम्बुज के सहारे,
दोनों नयन सफल हैं लख के हमारे।
त्रैलोक्य के तिलक यह संसार सागर,
चुल्लू प्रमाण दिखता जिनवर को पाकर।।

***

वीतरागस्तोत्रम्

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्म न कर्त्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।1।।

न बन्धो न मोक्षो न रागादि दोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकं।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।2।।

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चाक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।3।।

न जन्मं-मृत्युं न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।4।।

त्रिदंडे त्रिखंडे हरे विश्वनाथम्, हृषीकेश विध्वस्त कर्मादि जालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रम्, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।5।।

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढ़ो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।6।।

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न मन्या, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।7।।

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्य स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नो न परमार्थमेकम्, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्।।8।।

आत्माराम गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्य रत्नाकरं
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे ज्ञाते त्वया सर्वगे।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायंति योगीश्वराः
वंदे तं हरिवंशहर्षहृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम्।।9।।

।। इति श्री वीतरागस्तोत्रं समाप्तम् ।।

वीतराग स्तोत्र

-आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

शुद्ध बुद्ध शिव विश्वनाथ पर, कर्ता कर्म न बंधुदेव।
अंग संग न स्वेच्छा कायं, नमो निःसंग चिदानंद एव।।1।।

बंध मोक्ष रागादि दोष न, योग भोग व्याधि न शोक।
क्रोध मान माया न लोभं, नमो निःसंग चिदानंद एव।।2।।

हस्त पाद न घ्राणं जिह्वा, भृत्य मर्त्य स्वामी न देव।
चक्षु कर्ण न वक्त्रं निद्रा, नमो निःसंग चिदानंद एव।।3।।

क्षुद्र भीत न कार्श्यं तन्द्रा, जन्म मृत्यु न चिंता मोह।
स्वेद खेद न मुद्रा वर्णं, नमो निःसंग चिदानंद एव।।4।।

विश्वनाथ त्रिदण्ड त्रिखण्डे, पुण्य पाप चाक्षादि न गात्र।
कर्मजाल विध्वस्त हृषीकेश, नमो निःसंग चिदानंद एव।।5।।

बाल वृद्ध न तुच्छ मूढ़ न, स्वेद भेद न मूर्ति स्नेह।
कृष्ण शुक्ल न मोहं तंद्रा, नमो निःसंग चिदानंद एव।।6।।

अद्य मध्य न अंतं मन्या, द्रव्य क्षेत्र न कालो भाव।
दीन हीन गुरु शिष्य 'विशद' न, नमो निःसंग चिदानंद एव।।7।।

ज्ञान रूप ये तत्व स्ववेदी, अन्य भिन्न परामर्थ न एक।
पूर्ण शून्य न चैत्य स्वरूपी, नमो निःसंग चिदानंद एव।।8।।

गुण निधि गुणकर आत्मराम हे !, अद्भुत चेतन रत्नाकर।
भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब, सुख दुःख ज्ञाता करुणाकर।।
तीन लोक के अधीपति को, योगी-जन मन से ध्याते।
हरीवंश के श्रीमान् का, वंदन कर उर हर्षाते।।

परमानन्दस्तोत्रम्

परमानन्दसंयुक्तं निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति निजदेहे व्यवस्थिम्।।1।।

अनंतसुखसंपन्नं ज्ञानामृतपयोधरम्।
अनंतवीर्यसंपन्नं दर्शनं परमात्मनः।।2।।

निर्विकारं निराबाधं सर्वसंगविवर्जितम्।
परमानन्दसंपन्नं शुद्धचैतन्यलक्षणम्।।3।।

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यात् मोहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिन्ताऽधमाधमा।।4।।

निर्विकल्पसमुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसं।
विवेकमंजलिं कृत्वा तं पिबंति तपश्विनः।।5।।

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति स पंडितः।
स सेवते निजात्मानं परमानन्दकारणम्।।6।।

नलिन्यां च यथा नीरं भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
सोऽयमात्मा स्वभावेन देहे तिष्ठन्ति निर्मलः।।7।।

द्रव्यकर्ममलैः मुक्तं भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्म-रहितं सिद्धं निश्चयेन चिदात्मकम्।।8।।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यंधा इव भास्करम्।।9।।

सद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम्।।10।।

ये ध्यानलीना मुनयः प्रधानाः ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सन्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेवं।।11।।

आनंदरूपं परमात्म तत्त्वं, समस्त संकल्प विकल्प मुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम्।।12।।

***

परमानन्द स्वरूप

चिदानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयम्।
अनंतसुखसंपन्नम् सर्वसंघविवर्जितम्।।13।।

लोकमात्रप्रमाणोयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनुर्मात्रः कथितः परमेश्वरैः।।14।।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा निर्विकल्पसमाधितः।।15।।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः।।16।।

स एव परमं ज्योतिः स एवं परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एवं परमात्मकः।।17।।

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवः।।18।।

स एव परमानंदः, स एव सुखदायकः।
स एव परमं ज्ञानं, स एव गुणसागरः।।19।।

परमाह्लाद संपन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु यो जानाति स पंडितः ।।20 ।।

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं निर्विकारं निरंजनम् ।।21 ।।

तत्सदृशं निजात्मानं यो जानाति स पंडितः।
सहजानंदचैतन्य-प्रकाशाय महीयसे ।।22 ।।

पाषाणेषु यथा हेमं दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं देहमध्ये तथा शिवः ।।23 ।।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति सः पंडितः ।।24 ।।

।। इति परमानन्दस्तोत्रम् ।।

श्री सरस्वतीस्तोत्रम्

चन्द्रार्ककोटिघटितोज्ज्वलदिव्यमूर्ते
श्रीचन्द्रिकाकलित-निर्मल-शुभ्रवस्त्रे।
कामार्थदायि-कलहंस-समाधिरुढे
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।1 ।।

देवासुरेन्द्रनतमौलिमणिप्ररोचिः
श्रीमंजरी निविड-रंजित पाद पद्मे।
नीलालके प्रमद-हस्तिसमानयाने
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।2 ।।

केयूर-हार-मणि-कुंडल-मुद्रिकाद्यैः
सर्वांग-भूषण-नरेन्द्र-मुनीन्द्र वंद्ये।
नाना सुरत्नवरनिर्मलमौलियुक्ते
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।3 ।।

मंजीरकोत्कनककंकणकिंकणीनां
काञ्चयाश्च झंकृतरवेण विराजमाने।
सद्धर्म वारिनिधिसंततिवर्धमाने
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।4 ।।

कंकेलि-पल्लव-विनिंदित-पाणियुग्मे
पद्मासने दिवस-पद्मसमान वक्त्रे।
जैनेन्द्रवक्त्र-भवदिव्य-समस्तभाषे
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।5 ।।

अर्द्धेन्दुमंडितजटा-ललितस्वरूपे
शास्त्रप्रकाशिनि समस्तकलाधिनाथे।
चिन्मुद्रिका जपसरामय पुस्तकांके
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।6 ।।

डिंडीरपिंड हिमशङ्खसिताभ्रहारे
पूणेन्दुबिंबरुचिशोभित दिव्यगात्रे।
चांचल्यमानमृगशाववललाटनेत्रे
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।7 ।।

पूज्ये पवित्रकरणोन्नतकामरूपे
नित्यं फणीन्द्र गरुड़ाधिप किं नरेन्द्रैः।
विद्याधरेन्द्र सुरयक्षसमस्तवृन्दैः
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ।।8 ।।

***

श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्रम्

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूत – वृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ।।1 ।।

नमस्ते जगतां पत्ये, लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तुभ्यं, नमस्ते वदतांवर ।।2 ।।

कामशत्रुहणं देव, मानमन्ति मनीषिण: ।
त्वामानमन्सुरेण्मौलि–भा–मालाऽभ्यर्चितक्रमम् ।।3 ।।

ध्यान – द्रुघण – निर्भिन्न, घन – घाति महातरु: ।
अनन्त – भव – सन्तान, जयादासीदनन्तजित् ।।4।।

त्रैलोक्य – निर्जयावाप्त – दुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन ! मृत्युं जयो भवान् ।।5 ।।

विधूताशेष – संसार – बन्धनो भव्यबान्धव: ।
त्रिपुराऽरिस्त्वमेवासि, जन्म मृत्यु–जराऽन्तकृत् ।।6 ।।
त्रिकाल–विषयाऽशेष–तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशित: ।।7 ।।

त्वामन्धकाऽन्तकं प्राहु, र्मोहान्धाऽसुर–मर्दनात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यत: ।।8 ।।

शिव: शिवपदाध्यासाद्, दुरिताऽरि – हरो हर: ।
शंकर: कृतशं लोके, शंभवस्त्वं भवन्सुखे ।।9 ।।

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठ: पुरु: पुरुगुणोदयै: ।
नाभेयो नाभि–सम्भूतेरिक्ष्वाकु–कुल–नन्दन: ।।10।।

त्वमेक: पुरुषस्कन्धस्त्वं, द्वे लोकस्य लोचने ।
तवं त्रिधा बुद्ध–सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान–धारक: ।।11 ।।

चतु:शरण – मांगल्य – मूर्त्तिस्त्वं चतुरस्रधी: ।
पञ्च–ब्रह्ममयो देव, पावनस्त्वं पुनीहि माम् ।।12 ।।

स्वर्गाऽवतारिणे तुभ्यं, सद्योजाताम्ने नम: ।
जन्माभिषेकवामाय, वामदेव नमोऽस्तु ते ।।13 ।।

सन्निष्क्रान्तावघोराय, पदं परममीयुषे ।
केवलज्ञान – संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ।।14 ।।

पुरस्तत्पुरूषत्वेन विमुक्तपदभाजिने ।
नमस्तत्पुरुषाऽवस्थां, भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ।।15 ।।

ज्ञानावरण – निर्हासान्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे ।
दर्शनवरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ।।16 ।।
नमो दर्शनमोहघ्ने, क्षायिकाऽमलदृष्टये ।
नमश्चारित्रमोहघ्ने, विरागाय महौजसे ।।17 ।।

नमस्तेऽनन्तवीर्याय, नमोऽनन्तसुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्तलोकाय, लोकालोक–विलोकिने ।।18।।

नमस्तेऽनन्तदानाय, नमस्तेऽनन्तलब्धये ।
नमस्तेऽनन्तभोगाय, नमोऽनन्तोपभोगिने ।।19 ।।

नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ।।20।।

नमः परमविद्याय नमः पर-मतच्छिदे ।
नमः परम-तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ।।21 ।।

नमः परम-रूपाय नमः परम-तेजसे ।
नमः परम-मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ।।22 ।।

परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः ।
नम पारेतमः प्राप्तधाम्ने परतराऽऽत्मने ।।23 ।।

नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबन्ध ! नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ।।24 ।।

नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे ।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायाऽनिन्द्रियात्मने ।।25 ।।

काय - बन्धन - निर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ।।26 ।।

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः ।
नमः परम-योगीन्द्रवन्दिताङ्घ्रिद्वयाय ते ।।27 ।।

नमः परम-विज्ञान ! नमः परम-संयम ! ।
नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय ते नमः ।।28।।

नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे ।
नमो भव्येतराऽवस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे ।।29 ।।

संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था- व्यतिरिक्ताऽमलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ।।30 ।।

अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे ।
व्यतीताऽशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ।।31।।

अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेवीतजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाऽक्षरात्मने ।।32 ।।

अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावकागुणाः ।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे ।।33 ।।

एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः ।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ।।34 ।।

इति प्रस्तावना

प्रसिद्धाऽष्टसहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरांपतिम् ।
नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ।।1 ।।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः शम्भवः शम्भुरात्मभूः ।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ।।2।।
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।
विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ।।3 ।।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ।।4।।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ।।5 ।।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः ।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरऽबन्धनः ।।6 ।।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ।।7 ।।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरऽयोनिजः ।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ।।8 ।।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वराऽर्चितः ।
ब्रह्मविद् बह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ।।9 ।।

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।
सिद्ध सिद्धान्तविद् ध्येयः सिद्धासाध्यो जगद्धितः ।।10 ।।

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः ।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ।।11 ।।

विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ।।12 ।।

इति श्रीमदादिशतम् ।।1 ।।

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ।।1 ।।

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थकृत् केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ।।2 ।।

अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ।।3 ।।

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोर्निरामयः ।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ।।4 ।।

अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ।।5 ।।

वृषभध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः ।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः ।।6 ।।

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ।।7 ।।

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः ।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ।।8 ।।

सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित् सर्वलोकजित् ।।9 ।।

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतो विश्वतःपादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ।।10 ।।
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ।।11 ।।

इति दिव्यादिशतम् ।।2 ।।

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ।।1 ।।

विश्वभद् विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभुग् विश्वनायकः ।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ।।2 ।।

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्।
विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ।।3 ।।

विनेयजनताबन्धुर्विलीनाशेषकल्मषः ।
वियोगो योगविद् विद्वान् विधाता सुविधिः सुधीः ।।4 ।।

क्षान्तिभाक्पृथ्वीमूर्तिः शान्तिभाक्सलिलात्मकः।
वायुमूर्तिरसंगात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ।।5 ।।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्रामपूजितः।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञांगममृतं हविः ।।6 ।।

व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ।।7 ।।

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत्।।8।।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जयो मृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः ।।9।।
ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः ।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मोड् महाब्रह्मपदेश्वरः ।।10 ।।

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ।।11 ।।

इति स्थविष्ठादिशतम् ।।3 ।।

महाऽशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ।।1 ।।

पद्ममयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ।।2 ।।

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ।।3 ।।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ।।4 ।।

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्य-निरोधकः ।।5 ।।

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ।।6 ।।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतागा निरास्रवः ।।7 ।।

विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत् सुनयतत्त्ववित् ।।8 ।।
एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ।।9 ।।

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ।।10 ।।

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ।।11 ।।

इति महाशोकध्वजादिशतम् ।।4 ।।

श्रीवृक्षलक्षण: श्लक्ष्णो लक्षण्य: शुभलक्षण: ।
निरक्ष: पुण्डरीकाक्ष: पुष्कल: पुष्करेक्षण: ।।1 ।।

सिद्धिद: सिद्धसंकल्प: सिद्धात्मा सिद्धसाधन: ।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिक: ।।2 ।।

वेदांगो वेदविद् वेद्यो जातरूपो विदांवर: ।
वेदवेद्य: स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवर: ।।3 ।।

अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासन: ।
युगादिकृद् युगाधारो युगादिर्जगदादिज: ।।4 ।।

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्रमहितो महान् ।।5 ।।

उद्भव: कारणं कर्ता पारगो भवतारक: ।
अगाह्यो गहनं गुह्यं पराघ्र्य: परमेश्वर: ।।6 ।।

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धि: समग्रधी: ।
प्राग्र्य: प्राग्रहरोऽभ्यग्र:प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रज: ।।7 ।।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदय: ।
महायशा महाधामा महासत्वो महाधृति: ।।8।।

महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबल: ।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युति: ।।9।।

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महोदय: ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकवि: ।।10 ।।

महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपु: ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुण: ।।11 ।।

महामहपति: प्राप्तमहाकल्याणपञ्चक: ।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वर: ।।12 ।।

इति श्रीवृक्षादिशतम् ।।5 ।।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादम: ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामख: ।।1 ।।

महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्तिधरोऽधिप: ।
महामैत्री महामेयो महोपायो महोमय: ।।2 ।।

महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायति: ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपति: ।।3 ।।

महाध्वरधरो धुर्य्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदय: ।।4 ।।

महाक्लेशांकुश: शूरो महाभूतपतिर्गुरु: ।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी ।।5 ।।

महाभवाब्धिसंतारीर्महामोहाऽद्रिसूदन: ।
महागुणाकर: क्षान्तो महायोगीश्वर: शमी ।।6 ।।

महाध्यानपतिर्ध्यातामहाधर्मा महाव्रत: ।
महाकर्मारिहाऽऽमज्ञो महादेवो महेशिता ।।7 ।।

सर्वक्लेशापह: साधु: सर्वदोषहरो हर: ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकर: ।।8।।

सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ।।9 ।।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ।।10 ।।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः ।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ।।11 ।।

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः ।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ।।12 ।।

इति महामुन्यादिशतम् ।।6 ।।

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत् ।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ।।1।।

अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ।।2 ।।

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ।।3 ।।
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः ।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ।।4 ।।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः ।
विशिष्टः शिष्टभुक्शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ।।5 ।।

क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ।।6 ।।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः ।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ।।7 ।।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ।।8 ।।

स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान् दूरदर्शनः ।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ।।9 ।।

सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः ।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ।।10 ।।

सुघोषः समुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् ।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ।।11 ।।

इति असंस्कृतादिशतम् ।।7 ।।

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ।।1।।

नैकरूपो नयोत्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ।।2।।
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ।।3 ।।

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता ।
मनोहारो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासनः ।।4 ।।

धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः ।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ।।5 ।।

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासन: ।
सुरूप: सुभगस्त्यागी समयज्ञ: समाहित: ।।6 ।।

सुस्थित: स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्भव: ।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृह: ।।7 ।।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा नि:सपत्नो जितेन्द्रिय: ।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहानघ: ।।8 ।।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचर: ।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ।।9 ।।

अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दित: ।
सर्वत्रग: सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ।।10 ।।

शंकर: शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायण: ।
अधिप: परमानन्द: परात्मज्ञ: परात्पर: ।।11 ।।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदय: ।
त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणि: ।।12 ।।

इति बृहदादिशतम् ।।8।।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रत: ।
सर्वलोकातिग: पूज्य: सर्वलोकैकसारथि: ।।1 ।।

पुराण: पुरुष: पूर्व: कृतपूर्वांगविस्तर: ।
आदिदेव: पुराणाद्य: पुरुदेवोऽधिदेवता ।।2 ।।

युगमुख्यो युगज्येष्ठो योगादिस्थितिदेशक: ।
कल्याणवर्ण: कल्याण: कल्य: कल्याणलक्षण: ।।3 ।।

कल्याणप्रकृतिर्दीप्तकल्याणात्मा विकल्मष: ।
विकलंक: कलातीत: कलिलघ्न: कलाधर: ।।4 ।।

देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभु: ।
जगद्धितैषी लोकज्ञ: सर्वगो जगदग्रज: ।।5 ।।

चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचर: ।
सद्योजात: प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभ: ।।6 ।।

आदित्यवर्णो भर्माभ: सुप्रभ: कनकप्रभ: ।
सुवर्णवर्णो रुक्माभ: सूर्यकोटिसमप्रभ: ।।7 ।।

तपनीयनिभस्तुंगो बालार्कभोऽनलप्रभ: ।
सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छवि: ।। 8 ।।

निष्टप्तकनकच्छाय: कनत्काञ्चनसन्निभ: ।
हिरण्यवर्ण: स्वर्णाभ: शातकुम्भनिभप्रभ: ।।9 ।।

द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युति: ।
सुधौतकलधौतश्री: प्रदीप्तो हाटकद्युति: ।।10 ।।

शिष्टेष्ट: पुष्टिद: पुष्ट: स्पष्ट: स्पष्टाक्षर: क्षम: ।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघ: प्रशास्ता शासिता स्वभू: ।।11 ।।

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठ: शिवताति: शिवप्रद: ।
शान्तिद: शान्तिकृच्छान्ति: कान्तिमान्कामितप्रद: ।।12 ।।

श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठ: प्रतिष्ठित: ।
सुस्थिर: स्थावर: स्थाणु: प्रथीयान्प्रथित: पृथु: ।।13 ।।

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ।।9 ।।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ।।1 ।।

तेजोराशिरनन्तौजो ज्ञानाब्धिः शीलसागरः ।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ।।2 ।।

जगच्चूडामणिर्दीप्तः शंवान्विघ्नविनायकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ।।3 ।।

अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरुकः प्रभामयः ।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ।।4 ।।

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः ।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ।।5 ।।

मूलकर्त्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः ।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ।।6 ।।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ।।7 ।।

श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः ।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ।।8।।

लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ।।9 ।।

प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः ।
भदन्तो भद्रकृतद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ।।10 ।।

समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाऽऽशुशुक्षणिः ।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ।।11 ।।

अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ।।12 ।।

समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी जितानंग कृपालुर्धर्मदेशकः ।।13 ।।

शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ।।14 ।।

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ।।10 ।।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः ।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ।।1।।

गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः ।
स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं त्वत्तोऽभिष्टफलं भजेत् ।।2।।

त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक् ।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ।।3 ।।

त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक् ।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगः स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ।।4 ।।

त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः ।
षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ।।5 ।।

दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः ।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ! ।।6 ।।

युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया ।
भवन्तं वरिवस्याम: प्रसीदानुगृहाण न: ।। 7 ।।

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिक: ।
य: संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ।।8 ।।

तत: सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधी: ।
पौरुहूर्ती श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुक: ।।9 ।।

स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम् ।
ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ।।10 ।।

स्तुति: पुण्यगुणोत्कीर्ति: स्तोता भव्य: प्रसन्नधी: ।
निष्ठितार्थो भवांस्तुस्य: फलं नैश्रेयसं सुखम् ।।11।।

य: स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुन: स्तोता स्वयं कस्यचित्,
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ।
यो नेन्तृन् नयते नमस्कृतिमलं नन्तव्यपक्षेक्षण:,
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य य गुरुर्देव: पुरु: पावन: ।।12 ।।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं,
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम् ।
मानस्तम्भविलोकनानत्तजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं,
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्तया प्रवन्दामहे ।।13 ।।

इति श्रीभगवज्जिनसहस्रनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

स्वयंभूस्तोत्र (भाषा)

राजविषे जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भवि शिवपद लियो ।
स्वयम्बोध स्वयम्भू भगवान, बन्दौं आदिनाथ गुणखान ।।1।।

इन्द्र क्षीर-सागर-जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय ।
मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौं अजित-अजित-पदकार ।।2।।

शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति अघाति सकल दु:खराशि ।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार बन्दौं सम्भव भव-दु:ख टार ।।3 ।।

माता पश्चिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार ।
भूप पूँछि फल सुनि हरषाय, बंदौं अभिनंदन मन लाय ।।4 ।।

सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्वाद धुनि धार ।
जैन-धरम परकाशक स्वामि, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रणाम ।।5 ।।

गर्भ अगाऊँ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय ।
बरसे रतन पंचदश मास, नमों पदमप्रभु सुख की रास ।।6 ।।

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुशाल ।
द्वादश सभा ज्ञानदातार, नमों सुपारसनाथ निहार ।।7 ।।

सुगुन छियालीस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं ।
मोह-महातमनाशक दीप, नमों चंद्रप्रभु राख समीप ।।8 ।।

द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह विध चारित्र प्रकाश ।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बंदौं पुष्पदंत मन आन ।।9 ।।

भवि सुखदाय सुरगतैं आय, दशविधि धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुख देह, बंदौं शीतल धर्म सनेह।।10।।

समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश।
चारसंघ-आनंद-दातार, नमो श्रेयांस जिनेश्वर सार।।11।।

रत्नत्रय शिवमुकुट विशाल, सोभै कंठ सुगुन मनिमाल।
मुक्तिनार भरता भगवान, वासुपूज्य वंदौं धर ध्यान।।12।।

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित-उपदेश।
कर्मनाशि शिवसुख विलसंत, बंदौं विमलनाथ भगवंत।।13।।

अन्तर-बाहिर परिग्रह डारि, परम दिगंबर व्रत को धारि।
सर्वजीवहित-राह दिखाय, नमों अनंत वचन-मन लाय।।14।।

सात तत्त्व पंचास्तिकाय, नव पदार्थ छह द्रव्य बताय।
लोक अलोक सकल परकास, बंदौं धर्मनाथ अविनाश।।15।।

पंचम चक्रवर्ति निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शांतिकरण सोलम जिनराय, शांतिनाथ बंदौं हरषाय।।16।।

बहु थुति करे हरष नहिं होय, निंदे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, बंदौं कुंथुनाथ शिवभूप।।17।।

द्वादशगण पूजैं सुखदाय, थुति वंदना करैं अधिकाय।
जाकी निजथुति कबहुँ न होय, वंदौं अर-जिनवर-पददोय।।18।।

परभव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग।
बाल-ब्रह्म-पूरन-व्रत धार, बंदौं मल्लिनाथ जिनसार।।19।।

बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकांत करै पगलाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, बंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं।।20।।

श्रावक विद्यावंत निहार, भगति भावसौं दियो अहार।
बरसी रतनराशि तत्काल, बंदौं नमिप्रभु दीनदयाल।।21।।

सब जीवन की बंदी छोर, राग-द्वेष द्वै बंधन तोर।
राजुल तज शिवतियसों मिले नेमिनाथ बंदौं सुख निले।।22।।

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनधार।
गयो कमठ शठ मुखकर श्याम, नमो मेरुसम पारस स्वाम।।23।।

भवसागर तैं जीव अपार, धरम पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बंदौं बहुबार।।24।।

दोहा

चौबीसों पद कमल जुग, बंदौं मन-वच-काय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय।।

***

श्री स्वयम्भूस्तोत्र-दोहा थुदि

(आचार्य श्री विद्यासागरजी विरचित)

आदिम तीर्थंकर प्रभो, आदिनाथ मुनिनाथ।
आधि-व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ।।
शरण चरण हैं आपके, तारण तरण जहाज।
भव-दधि-तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज।।1।।

जित-इन्द्रियजित-मदबने, जित-भवविजित-कषाय।
अजित-नाथ को नित नमूँ, अर्जित दुरित पलाय।।
कोंपल पल-पल को पले, वन में ऋतु-पति आय।
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिन पद पाय।।2।।

तुम-पद-पंकज से प्रभो, झर-झर झरी पराग।
जब तक शिव-सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग।।
भव-भव, भव-वन भ्रमित हों, भ्रमता-भ्रमता आज।
संभव-जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज।।3।।

विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत।
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत।।
गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत।
अभिनन्दन जिन ! नित नमूँ, मुनि बन मैं भवभीत।।4।।

सुमतिनाथ प्रभु सुमति हो, मम मति है अति मंद।
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरन्द।।
तुम जिन मेघ मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ।
सुचिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ।।5।।

शुभ्र-सरल तुम, बाल तव, कुटिल कृष्ण-तम नाग।
तव चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग।।
''विराग'' पद्मप्रभु आपके, दोनों पाद-सराग।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग।।6।।

अबंध भाते काटके, वसु विध विधिका बंध।
सुपार्श्व प्रभु जिन प्रभुपना, पा पाये आनन्द।।

बाँध-बाँध विधि-बंध मैं, अन्ध बना मति-मन्द।
ऐसा बल दो अंध को, बंधन तोड़ूँ द्वन्द।।7।।

चंद्र कलंकित, किन्तु हो, चन्द्र प्रभु अकलंक।
वह तो शंकित केतु से, शंकर तुम निःशंक।।
रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मनका पंक।
जाप जपूँ जिन-नाम का, बैठ सदा पर्यंक।।8।।

सुविध! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर।
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर।।
बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि-बाल।
मम वबाल भव का मिटे, प्रभु-पद में मम भाल।।9।।

शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा, शीतल हरता पीर।।
सुचिर काल से मैं रहा, मोह-नींद से सुप्त।
मुझे जगा कर, कर कृपा, प्रभो ! करो परितृप्त।।10।।

अनेकान्त की कान्ति से, हटा तिमिर एकान्त।
नितान्त हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शान्त।।
निःश्रेयस सुख-धाम हो, हे ! जिनवर श्रेयांस।
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लौं घट में श्वाँस।।11।।

वसुविध मंगल द्रव्य ले, जिन पूजो सागार।
पाप-घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार।।
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजो मुनि लोग।
बिन निज शुभ उपयोग के, शुद्ध न हो उपयोग।।12।।

कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल।
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल।।

मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भगवान।
विमलनाथ तुम अमल हो, संबल दो भगवान।।13।।

गुण अनन्त पा कर दिया, भव अनन्त का अन्त।
सार्थक नाम अनन्त तव, जिन अनन्त जयवन्त।।
सुख अनन्त पाने सदा, भव से हो भयवन्त।
हर क्षण मैं स्मरुँ तुम्हें, स्मरें सब जिन सन्त।।14।।

दया धर्म वर धर्म है, अदया-भाव अधर्म।
तज अधर्म प्रभु धर्म ने, समझाया पुनि धर्म।।
धर्मनाथ को नित नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म।
धर्म-मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म।।15।।

शान्तिनाथ हो शान्त कर, सातासाता सान्त।
केवल, केवल-ज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वान्त।।
सकल ज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश।
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूँ नत शीश।।16।।

ध्यान-अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप परिताप।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने-आप।।
ऐसी मुझ पै हो कृपा, मम मन मुझमें आय।
जिस विध पल में लवण है जल में घुल मिल जाय।।17।।

नाममात्र भी नहिं रखों, नाम-काम से काम।
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम।।
नाम धरो ''अर'' नाम तव, अतः स्मरूँ अविराम।
बन अनाम शिवधाम में, काम बनूँ कृत-काम।।18।।

मोह मल्ल को मार कर, मल्लिनाथ जिनदेव।
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वयमेव।।

बाल ब्रह्मचारी विभो !, बाल समान विराग।
किसी वस्तु से राग ना, मम तव पद से राग।।19।।

मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ।।
यही भावना मम रहीं, मुनिव्रत पाल यथार्थ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ, पावन पाय पदार्थ।।20।।

अनेकान्त का दास हो, अनेकान्त की सेव।
करूँ गहूँ मैं शीघ्र से, गुण अनेक स्वयमेव।।
मैं अनाथ जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ।
तव पद में दिन-रात हूँ, हाथ जोड़ नत माथ।।21।।

नील गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नीलकमल आसीन हो, नीलम से अति नील।।
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील।
शील डोर मुझ बाँध दो, डोर करो मत ढील।।22।।

खास दासकी आस बस, श्वॉस-श्वॉस पर वास।
पार्श्व करो मत दासको, उदासता का दास।।
ना तो सुर-सुख चाहता, शिव-सुख की ना चाह।
तव थुति-सरवर में सदा, होवे मम अवगाह।।23।।

नीर-निधि-से धीर हो, वीर बने गंभीर।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भवसागर का तीर।।
अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अन्तर की तस्वीर।।24।।

***

चौबीस तीर्थंकर स्तवन

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

दोहा – **मंगलमय मंगल परम, विशद ज्ञान के नाथ।**
तीर्थंकर चौबीस के, चरण झुकाते माथ।।

तर्ज : वन्देमातरम्...

तीर्थंकर वृषभेष ने भू पर, धर्म ध्वजा फहराई है।
केवलज्ञान के द्वारा प्रभु ने, जिनवाणी भी गाई है।।
असि मसि कृषि वाणिज्य कला अरु, शिल्प का भी उपदेश दिया।
भूखे को भोजन की सुविधा, पाने का संदेश दिया।
आदिम तीर्थंकर बन प्रभु ने, धरती पर अवतार लिया।
स्वयं बुद्ध होकर भगवन् ने, संयम दे उपकार किया।
मोक्ष मार्ग पर सबसे पहले, चलकर जग को बता दिया।
सरल किया है मोक्ष का मारग, बढ़ो इसी पर जता दिया।।1।।

कर्मों का महाराजा बनकर, जीवों को ललचाता है।
मोह महा चक्री बनकर के, जग को नाच नचाता है।
उस राजा को जीतकर प्रभु जी, इस जगती पर विजित हुये।
द्वितीय तीर्थंकर इस जग में, विजय श्री पा अजित हुये।
अजिनाथ बनकर के तुमने, राग द्वेष को जीत लिया।
सार्थक नाम आपने पाकर, कर्मों को भयभीत किया।।
कर्म विजेता बनने हेतु, हमको भी दे दो वरदान।
अजितनाथ जी तव चरणों का, विशद लगाऊँ मैं भी ध्यान।।2।।

कठिन जीतना है कषाय का, उसको कर दिखलाया है।
कर्म शत्रु जो लगे पुराने, उनको मार भगाया है।।
सारे जग के कार्य असम्भव, अपने हाथों आप किये।
मुक्ति पथ से हार न मानी, कितने कड़वे घूँट पिये।।
संभवनाथ जी संभव कर दो, मोक्ष मार्ग मेरे भी हेत।
भव समुद्र को पार करूँ मैं, पा जाऊँ आतम का भेद।।
भटक रहे हैं चरण शरण बिन, अपनी शरण हमें दीजे।
देकर हमको 'विशद'' सहारा, अपने पास बुला लीजे।।3।।

भव बंधन से छूट गये जो, बन गये हैं शिव के नंदन।
चर अरु अचर जीव सब जग के, करते हैं पद का वंदन।।
जिस पदवी को तुमने पाया, करते उसका अभिनंदन।
हे ! अभिनंदन तव चरण कमल की, धूलि है शीतल चंदन।।
आत्म ध्यान को पाकर तुमने, मैटा भव का आक्रंदन।
तप के द्वारा तपा तपाकर, आत्म बनाया है कुंदन।।
मन में आकुलता छाई मम, कर्म ने डाला है बंधन।
अभिनंदन जी अभिवंदन है, करदो कर्मों का खण्डन।।4।।

राज ताज गजराज तुरग को, त्याग के वन की शरण लही।
छोड़के सारे जग का वैभव, संयम तप की शरण गही।।
कुमति त्यागकर सुमति प्राप्त कर, सुमति नाम को पाया है।
केवलज्ञान जगाकर तुमने, सार्थक नाम बनाया है।।

लोकालोक प्रकाशित होता, सुमतिनाथ की शुभ मति से।
केहरि किन्नर नरपति द्वारा, पूज्य हुये प्रभु सुरपति से।।
सुमतिनाथ से सुमति के द्वारा, प्राणी पाते शुभ मति को।
वंदन करके सुमतिनाथ को, पाना हमको सद् गति को।।5।।

पद्माकर में पद्म प्रफुल्लित, होता है दिनकर को देख।
पद्म प्रभु के पाद पद्म में, अंकित लाल पद्म का लेख।।
पाद पद्म में चतुर्दिशा से, श्रावक दौड़े आते हैं।
भक्ति भाव से वंदन करके, प्राणी मधु रस पाते हैं।।
पद्म पराग चाहता मैं भी, पाद पद्म को पाता हूँ।
पद्म प्रभु आशीष दीजिये, पद में शीष झुकाता हूँ।।
चरणों में वश अर्ज यही है, कृपा नाथ हम पर कीजे।
हे ! दया निधे हे ! पद्म प्रभु जी, हमको पंथ बता दीजे।।6।।

सुंदर पारस मणि भी फीकी, पड़ती प्रभु की शोभा से।
सुपार्श्व नाथ जी दमक रहे हैं, लोक शिखर पर आभा से।।
जिनके दर्शन कर लेने पर, पूरी होती आशाएँ।
विशद नष्ट हो जाती जितनी, लगी हुई थीं बाधाएँ।।
तीन काल में अनुपम पारस, तीन लोक के शिखामणी।
ऋषि मुनियों के मध्य में प्रभु जी, आप हैं उत्तम पार्श्वमणी।।
लोकालोक प्रकाश करे वह, पाया तुमने केवलज्ञान।
इसीलिये तो हुये धरा पर, आप जहाँ में सर्व महान्।।7।।

शरद चंद्र चंदन से चर्चित, करता जिनके चरण कमल।
नहीं जहाँ में दिखता कुछ भी, चंद्र प्रभु सम धवल अमल।।
सूर्य चंद्र लज्जित होकर के, चरणों में झुक जाते हैं।
चंद्रप्रभु की चरण वंदना, करने हेतु आते हैं।।
चंद्र चाँदनी की शीतलता, हाथ जोड़ सिरनाती है।
चंद्र मणी तो प्रमुदित होकर, सादर शीष झुकाती है।।
रात कुमुदिनी खिल जाती है, चंद्र बिम्ब के दर्शन से।
विशद ज्ञान का फूल यों खिलता, चंद्र प्रभु के चरणन से।।8।।

धवल पुष्प पंक्ति सरवर में, मोहित करती जग जन को।
पुष्पदंत की सुंदर सूरत, करती मोहित तन मन को।।
सूर्य उदय को देख कमल ज्यों, नत मस्तक हो जाता है।
पुष्पदंत के शुभादर्श से, मम मस्तक झुक जाता है।
पुष्प सुकोमल और सुगंधित, सरवर को शोभित करता।
अपनी आभा के द्वारा जो, जन-जन के मन को हरता।।
शंख पुष्प की शोभा प्रभुजी, पुष्पदंत का तन पाता।
चरण वंदना करता हूँ मैं, विशद भाव से गुण गाता।।9।।

वीतरागता धारण करते, शीतलता को मात करें।
शीतल नाथ जिनेश्वर जग में, समता की बरसात करें।
चंदन सी शीतलता मिलती, प्रभु पद के स्पर्शन से।
निज आतम की छवि दिखती है, शीतलनाथ के दर्शन से।।

जल स्वभाव में आ जाता तब, हो जाता है अतिशीतल।
कतक योग से नश जाता है, जल में हो जो भी कलमल।।
शीतल नाथ जी शीतलता दो, कर दो मेरे कर्म शमन।
विशद ज्ञान से भर दो हमको, करते हैं शत् बार नमन।।10।।

आश्रय पाने जग के प्राणी, चरण में तेरे आते हैं।
शुद्ध भाव से आश्रय पाकर, मन वांछित फल पाते हैं।।
आश्रय बिन प्रभु श्रेय नाथ के, भव-भव में भटकाते हैं।
जो पा जाते चरण शरण को, नि:श्रेयस पा जाते हैं।।
आश्रय दे दो पद पंकज की, मुझको श्री श्रेयांस प्रभु।
श्रेयस्कर मम् जीवन कर दो, शीष झुकाता चरण विभु।।
आश्रय दाता हो जग जन के, मंगलमय हैं आप महाँ।
आश्रय चाह रहा है सेवक, नाशो मेरा सर्व जहाँ।।11।।

महाकाम को शील शस्त्र से, क्षण में जिसने जीत लिया।
वासुपूज्य जिनके चरणों में, काम ने माथा टेक दिया।।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष ये, पंच कल्याणक गाये हैं।
चम्पापुर नगरी में सारे, वासुपूज्य जिन पाये हैं।।
रूप आपका लखकर मेरे, नयन सृजल हो जाते हैं।
चरण वंदना करने हेतु, भाव रोक नहिं पाते हैं।।
वासुपूज्य तुम जगत पूज्य हो, आया हूँ तव चरणों में।
'विशद' मुक्ति न पाई जब तक, वशे रहो मम नयनों में।।12।।

चार घातिया कर्म नाशकर, विमल नाथ जी विमल हुये।।
लोकालोक प्रकाशक होकर, 'विशद' ज्ञान से प्रबल हुये।।
सकल चराचर जीव जगत् के, विमल चरण को पाते हैं।
कर्म नाशकर अपने सारे, विमल स्वयं हो जाते हैं।।
द्रव्य भाव नो कर्म नाशकर, निर्मलता को पाता है।
विमल अमल संयम के द्वारा, निर्मल हृदय बनाता है।।
विमल चरण कमलों से फैले, सारे जग में ज्ञान सुवास।
विमल नाथ शक्ति दो इतनी, 'विशद' ज्ञान में हो मम वास।।13।।

प्रभु अनंत भगवंत कंत अब, मुझको भी धीमंत करो।
ज्ञान अनन्त हमें दो भगवन, जन्म मरण का अंत करो।।
नहीं हो जिसका अंत कभी वह, ज्ञान सुधा बरसाते हैं।
आते जो भी संत चरण में, भव का अंत पा जाते हैं।।
कर्म अनन्त का छेदन करके, गुण अनन्त तव पाये हैं।
मोह शत्रु पर विजय प्राप्तकर, अनन्त नाथ कहलाये हैं।।
सुर नर किन्नर विद्याधर भी, स्तुति करने आते हैं।
ऋषि मुनि यति गणधर भक्तिकर, सुख अनंत पा जाते हैं।।14।।

धर्म कर्म का मर्म धरा पर, धर्मनाथ जी से होता।
कर्म नाशकर नर्म भाव से, बीज पुण्य का भी बोता।।
धर्म गर्म करता तप करके, बसु कर्मों को दहता है।
शर्म त्याग कर देता सारी, पूर्ण दिगम्बर रहता है।।

धर्मनाथ के साथ धर्म की, ध्वजा हमें फहराना है।
समता का सागर धरती पर, धर्म से ही लहराना है।।
धर्म भावना से भरकर मैं, धर्मनाथ पद पाता हूँ।
धर्म नाथ जी तव चरणों में, विशद भावना भाता हूँ।।15।।

महा शांति के दाता जग में, प्रभुवर शांतिनाथ हुये।
कामदेव तीर्थंकर चक्री, त्रय पद जिनको साथ हुये।।
क्रांतिकारि भी शांति पाते, जिनके पद आराधन से।
द्वेष दम्भ छल डरकर भागें, जग में मानव जीवन से।।
महाकाल को संयम द्वारा, तुमने क्षण में ध्वस्त किया।
कामदेव होकर के प्रभु ने, काम शत्रु को पस्त किया।।
शांतिनाथ शांति दो हमको, शांति की भिक्षा मांगें।
विशद शांति समता पाकर हम, आतम के हित में लागें।।16।।

छह खण्डों का वैभव पाकर, भूल स्वयं को भोग किया।
निज वैभव का भान हुआ तो, कण की भांति त्याग दिया।।
धर्म चक्र लेकर के रण में, कुन्थुनाथ जी उतर गये।
कर्म शत्रु के सर पर चढ़कर, भव समुद्र से उभर गये।।
कुन्थुनाथ जिनराज राज तज, आत्म तत्व का रस आया।
शुद्धातम का ध्यान लगाकर, महाराजा पद को पाया।।
कुन्थुनाथ जी कृपा करो मम्, ज्ञानामृत से हृदय भरो।
मोह तिमिर छाया नयनों का, विशद ज्ञान से दूर करो।।17।।

त्रिय पद धारी जग उपकारी, अरहनाथ जग में नामी।
राग आग को त्याग किया है, बने आत्म धन के स्वामी।।
कुपथ का खण्डन करने वाली, हित मित प्रिय तेरी वाणी।
जिन सूत्रों की प्रतिपादक है, अत: कहाती जिनवाणी।।
अरहनाथ जी राह दिखा दो, मोक्ष महल में जाने की।
लगन लगी है मेरे मन में, जग से मुक्ति पाने की।।
अरहनाथ जी नहीं मिला है, जग में कोइ तेरी सानी।
विशद ज्ञानआचरण प्राप्त कर, बन जाऊँ केवलज्ञानी।।18।।

मोह मल्ल को मार गिराया, आप हुए मल्लों के नाथ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण तप, आराधन को लिया है साथ।।
काम अग्नि की तीव्र ज्वलन से, जलता है यह जग सारा।
शील समुद्र से जल भर करके, छोड़ी तुमने जलधारा।।
मल्लिनाथ के पद में नत हैं, इस जग में जो भी हैं मल्ल।
छूमंतर होती दर्शन से, मन में लगी हुई जो शल्य।।
मल्लिनाथ तव शील के आगे, हार काम ने भी मानी।
शील स्वभावी बना दीजिये, 'विशद' प्रतिज्ञा हम ठानी।।19।।

मुनिसुव्रत जी ने मुनि बनकर, महाव्रतो को वरण किया।
द्रव्य भाव से रत्नात्रय को, स्वयं बोध से ग्रहण किया।।
निश्चय अरु व्यवहार मार्ग का, सुन्दर ढंग से कथन किया।
सप्त तत्व अरु नौ पदार्थ का, आत्म ध्यान से मथन किया।

संशय अरु अज्ञान से पीड़ित, जग में जो भी प्राणी हैं।
मुनिसुव्रत की मंगलवाणी, उन सबकी कल्याणी है।।
मुनिसुव्रत ने संयम सरिता, जन मानस में लहराई।
पद पंकज में मुनिसुव्रत के, 'विशद' भावना शुभ भाई।।20।।

नील कमल के सिंहासन पर, नमीनाथ जिनवर स्वामी।
नील गगन में अधर विराजे, नमी प्रभु हैं शिवगामी।।
निरालम्ब निर्मल निर्भय हो, नील गगन में जिनका वास।
तप्त स्वर्ण सम तन अति सुन्दर, प्रहसित होती सदा सुवास।।
नमीनाथ ने निज कमियों, को एक-एक कर दूर किया।
भोग रोग के नाश करन को, आत्म योग भरपूर किया।।
नमीनाथ जी साथ चाहते, मुक्ति पथ पर बढ़ने को।
'विशद' सहारा देना हमको, सिद्ध सिला पर चढ़ने को।।21।।

राह पे बढ़ते हुये सुना था, पशुओं का जब आक्रन्दन।
सृजल हुआ था हृदय आपका, जैसे हो शीतल चंदन।।
रथ को मोड़ दिया था प्रभु ने, ऊर्जयन्त पर्वत की ओर।
गिरनारी के शीष पे चढ़कर, तप में लीन हुये अतिघोर।।
अम्बर तजकर हुये दिगम्बर, ध्यान लगाया आतम का।।
नेमि जिनेश्वर बनकर तुमने, पद पाया परमातम का।।
सारे जग की आशा त्यागी, वीतरागता को पाया।।
शरण छोड़कर सारे जग की, 'विशद' शरण तेरी आया।।22।।

घोर उपद्रव करते-करते, हार काल ने भी मानी।
सारे जहां के लोगों ने तब, तप की शक्ती पहिचानी।।
शुक्ल ध्यान में लीन हुये थे, सप्त तत्व का मनन किया।
पार्श्व प्रभु ने तप अग्नि से, कर्म शत्रु का हनन किया।।
चिंतामणि चिंतन करने पर, इच्छित फल को देते हैं।
पार्श्व प्रभु का चिंतन करके, मुक्ति वधु पा लेते हैं।।
पार्श्वनाथ के पद स्पर्श, को यह जग भरता है आँहें।
पार्श्व प्रभु के 'विशद' चरण में, पारस बनने की चाहें ।।23।।

हिंसा का जब जोर बढ़ा था, इस भारत की भूमि पर।
दास प्रथा खुलकर हँसती थी, ऊँचा था पापी का सर।।
सत्य अहिंसा परमो धर्मः, शुभ नारा गुंजाया था।
केवलज्ञान का दीप वीर ने, अपने हृदय जलाया था।।
ध्यान अग्नि से महावीर ने, केवलज्ञान जगाया था।
नर जीवन का सार जहाँ के, हर प्राणी ने पाया था।।
युगों-युगों तक दिव्य देशना, वर्धमान की साथ रहे।
वीर प्रभु के पद पंकज में 'विशद' हमारा माथ रहे।।24।।

दोहा

चौबीसों जिनराज को, नमन करूँ कर जोर।
कदम-कदम बढ़ता चलूँ, मोक्ष महल की ओर।।

***

श्री विमल वंदनाष्टक

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

शरद चन्द्र सम उज्ज्वल निर्मल, रवि सम करते दिव्य प्रकाश।
अनुपम दिव्य देशना जिनकी, करती है कर्मों का नाश।।
वीतरागता धारी गुरुवर, महावीर के लघु नन्दन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के, चरणों में शत्–शत् वन्दन।।1।।

बाल्य अवस्था में ही गुरुवर, विषय भोग से मुक्त हुए।
तीर्थंकर जिनवाणी के अरु, जैन धर्म के भक्त हुए।।
वाणी शीतल है गुरुवर की, जैसे हो शीतल चन्दन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के, चरणों में शत्–शत् वन्दन।।2।।

जैन धर्म अमृत का झरना, जिनके द्वारा झरता है।
जन्म, जरा, मृत्यु रोगों को, जरा मूल से हरता है।।
मिथ्या मत एकान्त वाद का, करते रहते हैं खण्डन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के, चरणों में शत्–शत् वन्दन।।3।।

शुद्ध ध्यान अग्नि में तपकर, आतम शुद्ध बनाते हैं।
निश दिन ही एकान्त वास की, धर्म भावना भाते हैं।।
विशद भाव के द्वारा गुरुवर, करते आतम का मण्डन।
संत शरोमणि विमल सिंन्धु के, चरणों में शत्–शत् वन्दन।।4।।

ज्ञान, ध्यान, तप में रत रहते, विषयों से जो दूर रहें।
सत्य, अहिंसा, धर्म पुजारी, संयम से भरपूर रहें।।

धर्म प्रवर्तन करने में गुरु, बने हुए नाभिनन्दन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के चरणों में शत्–शत् वन्दन।।5।।

सत्य, धर्म अमृत का प्याला, भव्यों को गुरु पिला रहे।
संयम के उपवन में गुरुवर, शुभ फूलों को खिला रहे।।
ऋषि नहीं यह संत नहीं, यह कलि–काल के हैं भगवन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के चरणों में शत्–शत् वन्दन।।6।।

पञ्च महाव्रत धारण करते, रत्नत्रय के शिरोमणि।
ज्ञान, ध्यान, तप में रत रहते, शुभ सन्तों में शिरोमणि।।
सुरपति, नरपति, केहरि सारे, करते जिनका अभिनन्दन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के चरणों में शत्–शत् वन्दन।।7।।

चरण करण को वरण किया है, महामन्त्र के आराधक।
पञ्चाचार का पालन करते, भरत भूमि के शुभ साधक।।
''विशद'' ज्ञान का करते हैं जो, शुभ भावों से आराधन।
संत शिरोमणि विमल सिंन्धु के चरणों में शत्–शत् वन्दन।।8।।

दोहा

विमल सिन्धु गुरु की रहे, फैली जग में कीर्ति।
विशद ज्ञान के मूल हैं, महावीर की मूर्ति।।

***

पूजां कोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्रं कोटि समं जपः।
जप कोटि समं ध्यानं, ध्यानं कोटिं समं क्षमः।।

अर्थात् करोड़ पूजाओं के बराबर एक स्तोत्र है और करोड़ स्तोत्रों के बराबर एक जप है। करोड़ जप के बराबर एक ध्यान है और करोड़ ध्यान के बराबर एक बार की गयी क्षमा है।

।। ॐ ह्रीं श्रीं चन्द्रप्राभवे नमः ।।

आचार्य श्री विशद सागरः भक्तिः

हरिणी

स मुनि विशदं लोके शान्तिः प्रदायक सागरम्,
परम महिमा धारी कल्याण कारक मंगलम् ।
य गुरुवर षड्त्रिंशत् मूलान् गुणान् शुभ धारणम्,
शुभ विशद आचार्यं, भक्त्या नतेन नमाम्यहम् ।।

शिखरिणी

कुपी ग्रामे जन्मः छतरपुर तान् यस्य अभवत्,
पितुः नाथूरामः सुविशदमुनेः नाम परमम् ।
च इन्द्रा श्रीमातुः विमलमतिसा अस्ति रुचिरम्,
प्रवृत्तः कुर्यात् श्रीः विशद जिनधर्म शुभ नराः ।।

इन्द्रवंशा

धर्मस्य नित्यं उपदेश भाषते, आचार्य य ध्यायति आत्मनः सदा।
भावाः सदा शीतल यस्य निर्मलम्,भक्त्या मुनिः श्री विशदं नमाम्यहम्।।

दोधक

यस्य सु वाग् सुखदायक जीवा, श्रीः विशदः जिन शास्त्र सु वेत्ता।
यस्य गुरुः च विराग मुनिः श्रीः, तं विशदं प्रणमामि हि नित्यम्।।

उपेन्द्रवज्रा

सु जातरूपं विशदः स धाता, य जैनधर्मस्य रविः समानः।
च यस्य कुर्वन्ति नराः सु पूजा, गुरुः स कुर्यात् जिन धर्म वृद्धिः।।

भक्ति कर्ता : पण्डित धनुष्करः, 52/115, वीर तेजाजी रोड़, मानसरोवर, जयपुर

ऋषि मंडल स्तोत्रम्

आद्यंताक्षरसंलक्ष्यमक्षरं व्याप्य यत्स्थितं ।
अग्निज्वालासमं नादं बिंदुरेखासमन्वितं ।।1 ।।

अग्निज्वालासमाक्रांतं मनोमलविशोधनं ।
दैदीप्यमानं हृत्पद्मेतत्पदं नौमि निर्मलं ।।2 ।।

ॐ नमोऽर्हद्भ्य ईशेभ्य ॐ सिद्धेभ्यो नमो नमः।
ॐ नमः सर्वसूरिभ्यः उपाध्यायेभ्य ॐ नमः ।।3 ।।

ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः तत्वदृष्टिभ्य ॐ नमः।
ॐ नमः शुद्धबोधेभ्यश्चारित्रेभ्यो नमो नमः।।4 ।। युग्मं।

श्रेयसेऽस्तु श्रियेस्त्वेतदर्हदाद्यष्टकं शुभं ।
स्थानेष्वष्टसु सन्यस्तं पृथग्बीजसमन्वितं ।।5 ।।

आद्यं पदं शिरो रक्षेत् परं रक्षतु मस्तकं ।
तृतीयं रक्षेन्नेत्रे द्वे तुर्यं रक्षेच्च नासिकां ।।6 ।।

पंचमं तु मुखं रक्षेत् षष्ठं रक्षतु घंटिकां ।
सप्तमं रक्षेन्नाभ्यंतं पादांतं चाष्टमं पुनः ।।7 ।।

मंत्र बनाने का विधान

पूर्वं प्रणवतः सांतः सरेफो द्वित्रिपंचषान् ।
सप्ताष्टदशसूर्यांकान् श्रितो बिंदुस्वरान् पृथक् ।।8 ।।

पूज्यनामाक्षराद्यास्तु पंच दर्शनबोधकं ।
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये ह्रीं सांतसमलंकृतं ।।9 ।।

ॐ हां हिं हुं हूं हें हैं हौं हः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रेभ्यो ह्रीं नमः।

।। इति ऋषिमंडल स्तवस्य यंत्रस्य मूलमंत्रः ।।

आराधकस्यशुभफलदो, नवबीजाक्षरयुतस्तुतः सिद्ध ।
अष्टादशशुद्धाक्षर मंत्रोयं जाप्य एवं वरभक्त्या ।।10 ।।

जंबूवृक्षधरो द्वीपः क्षारोदधिसमावृतः ।
अर्हदाद्यष्टकैरष्टकाष्ठाधिष्ठैरलंकृतः ।। 11 ।।

तन्मध्ये संगतो मेरुः कूटलक्षैरलंकृतः ।
उच्चैरुच्चैस्तरस्तारतारामंडलमंडितः ।।12 ।।

तस्योपरि सकारांतं बीजमध्यास्य सर्वगं ।
नमामि बिंबमार्हत्यं ललाटस्थं निरंजनं ।।13 ।।

अर्हत्परमेश्वर का स्वरूप

अक्षयं निर्मलं शांतं बहुलं जाड्यतोज्झितं ।
निरीहं निरहंकारं सारं सारतरं घनं ।।14 ।।

अनुद्धतं शुभं स्फीतं सात्विकं राजसं मतं ।
तामसं विरसं बुद्धं तैजसं शर्वरीसमं ।।15 ।।

साकारं च निराकारं सरसं विरसं परं ।
पारापरं परातीतं परं परपरापरं ।।16 ।।

सकलं निष्कलं तुष्टं निर्भृतं भ्रांतिवर्जितं ।
निरंजनं निराकांक्षं निर्लेपं वीतसंशयं ।।17 ।।

ब्रह्माणमीश्वरं बुद्धं शुद्धं सिद्धमभंगुरं ।
ज्योतीरूपं महादेवं लोकालोकप्रकाशकं ।।18 ।।

अर्हदाख्यः सवर्णांतः सरेफो बिंदुमंडितः ।
तुर्यस्वरसमायुक्तो बहुध्यानादिमालितः ।।19 ।।

एकवर्णं द्विवर्णं च त्रिवर्णं तुर्यवर्णकं ।
पंचवर्णं महावर्णं सपरं च परापरं ।।20 ।।

अस्मिन् बीजे स्थिताः सर्वे ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता ध्यातव्यास्तत्र संगताः ।।21 ।।

नादश्चंद्रसमाकारो बिंदुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमा सांतः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ।।22 ।।

शिरः संलीन ईकारो विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारिसंलीनं तीर्थकृन्मंडलं नमः ।।23 ।।

तीर्थंकरों की स्थापना

चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ नादस्थितिसमाश्रितौ ।
बिंदुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिनसत्तमौ ।।24 ।।

पद्मप्रभवासुपूज्यौ कलापदमधिश्रितौ ।
शिर ईस्थितिसंलीनौ सुपार्श्वपार्श्वौ जिनोत्तमौ ।।25 ।।

शेषास्तीर्थंकराः सर्वेरहस्थाने नियोजिताः ।
मायाबीजाक्षरं प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हतां ।।26 ।।

गतारागद्वेषमोहाः सर्वपापविवर्जिताः ।
सर्वदा सर्वलोकेषु ते भवंतु जिनोत्तमाः ।।27 ।।

आत्मरक्षा की भावना

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु पन्नगाः ।।28 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु नागिनी: ।।29।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु गोनसा: ।।30 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु वृश्चिका: ।।31 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु काकिनी ।।32 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु डाकिनी ।।33 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु साकिनी ।।34 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु राकिनी ।।35 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु लाकिनी ।।36 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु शाकिनी ।।37 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु हाकिनी ।।38 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु भैरवा: ।।39 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु राक्षसा: ।।40 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु व्यंतरा ।।41 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु भेकसा: ।।42 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु लीनसा: ।।43 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु ते ग्रहा: ।।44 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु तस्करा: ।।45 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु वह्नय: ।।46 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु श्रृंगिण: ।।47 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु दंष्ट्रिण: ।।48 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु रेलपा: ।।49 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु पक्षिण: ।।50 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु मुद्गला: ।।51 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु जृंम्भका: ।।52 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु तोयदा: ।।53 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु सिंहका: ।।54 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु शूकरा: ।।55 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु चित्रका: ।।56 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु हस्तिन: ।।57 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु भूमिपा: ।।58 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु शत्रव: ।।59 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु ग्रामिण: ।।60 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु दुर्जना: ।।61 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु व्याधय: ।।62 ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु सर्वत: ।।63 ।।

श्री गौतमस्य या मुद्रा तस्या या भुवि लब्धय:।
ताभिरभ्यधिकं ज्योतिरर्ह: सर्वनिधीश्वर: ।।64 ।।

पातालवासिनो देवा देवा भूपीठवासिन:।
स्व: स्वर्गवासिनो देवा: सर्वे रक्षंतु मामित: ।।65।।

येऽवधिलब्धयो ये तु परमावधिलब्धय:।
ये सर्वे मुनयो दिव्या मां संरक्षंतु सर्वत: ।।66।।

भवनव्यंतरज्योतिष्ककल्पेंद्रेभ्यो नमो नम:।
ये श्रुतावधयो देशावधयो योगिनामका: ।।67।।

परमावधयस्सर्वावधयो ये दिगंबरा:।
बुद्धिऋद्धियुतास्सवौर्षधिऋद्धिश्रिताश्च ये ।।68।।

अनंतबलऋद्ध्याप्ता ये तप्ततपसोन्नता:।
रसर्द्धियुंजो विक्रियर्द्धिभाज: क्षेत्रर्धिसंगता: ।।69 ।।

तप: सामर्थ्यसंप्राप्ताक्षीणसद्यमहानसा:।
एतेभ्यो यतिनाथेभ्यो नूतेभ्योपास्तवादिभि: ।।70।।

तीर्णजन्मार्णवेभ्यस्सद्दृगृद्धिचारित्रवाग्भः वैः।
भव्येशेभ्यो भदंतेभ्यो नमोभीष्टपदाप्तये ।।71 ।।

ॐ श्रीह्रींकीर्तिधृतिर्लक्ष्मी गौरीचंडी सरस्वती।
जयाम्बा विजया क्लिन्नाऽजिता नित्या मदद्रवा ।।72 ।।

कामांगा कामबाणा च सानंदा नंदमालिनी।
माया मायाविनी रौद्री कला काली कलिप्रिया ।।73 ।।

एताः सर्वा महादेव्यो वर्तंते या जगत्त्रये।
मम सर्वाः प्रयच्छंतु कांतिं लक्ष्मीं धृतिं मतिं ।।74 ।।

दुर्जना भूतवेतालाः पिशाचा मुद्गलास्तथा।
ते सर्वे चोपशाम्यंतु देवदेवप्रभावतः ।।75 ।।

दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः श्री ऋषि मंडलस्तवः।
भाषितस्तीर्थनाथेन जगत्त्राणकृतोऽनघः ।।76।।

रणे राजकुले वह्नौजले दुर्गे गजे हरौ।
श्मशाने विपिने घोरे स्मृतो रक्षति मानवं ।।77 ।।

राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं प्राप्नुवंति न संशयः ।।78।।

भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतं।
धनार्थी लभते वित्तं नरः स्मरणमात्रतः ।।79 ।।

स्वर्णे रुप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत्।
तस्यैवेष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शश्वती ।।80 ।।

भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे।
धारितः सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशनं ।।81 ।।

भूतैः प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षैः पिशाचैर्मुद्गलैस्तथा।
वातपित्तकफोद्रेकैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।82।।

भूर्भुवः स्वस्त्रयीपीठवर्तिनः शाश्वता जिनाः।
तैः स्तुतैर्वंदितैर्दृष्टैर्यत्फलं तत्फलं स्मृतेः ।।83।।

एतद् गोप्यं महास्तोत्रं न देयं यस्य कस्यचित्।
मिथ्यात्ववासिनो देये बालहत्या पदे पदे ।।84।।

आचाम्लादितपः कृत्वा पूजयित्वा यथाबलं।[1]
अष्टसाहिस्रको जाप्यः कार्यस्तत्सिद्धिहेतवे ।।85।।

शतमष्टोत्तरं प्रातर्ये पठंति दिने दिने।
तेषां न व्याधयो देहे प्रभवंति च संपदः ।। 86 ।।

अष्टमासावधिं यावत् प्रातः प्रातस्तु यः पठेत्।
स्तोत्रमेतन्महातेज [2]अर्हद्देवं स पश्यति ।।87 ।।

दृष्टे सत्यार्हते बिंबे भवे सप्तमके ध्रुवं।
पदं प्राप्नोति विश्रस्तं परमानन्दसंपदा ।।88।।[3]

[4]विश्ववंद्यो भवेद् ध्याता कल्याणानि च सोश्नुते,

गत्वा स्थानं परं सोऽपि भूयस्तु न निवर्तते।
इदं स्तोत्रं महास्तोत्रं स्वतनानामुत्तमं परम्
पठनात्स्मरणाज्जापाल्लभते पदमव्ययम्।

।। इतिश्री ऋषिमंडल स्तोत्रम् समाप्तम्।।

1. जिनावलि ऐसा भी पाठ है। 2. तेजस्त्वर्हद्बिंब स पश्यति यह भी पाठ है। 3. परमा नंदनंदितं यह भी पाठ है। 4. प्राचीन प्रति से प्राप्त।

अथ नवग्रह शांति स्तोत्रम्

जगद्गुरुं नमस्कृत्य, श्रुत्वा सद्गुरुभाषितै ।
ग्रहशांतिं प्रवक्ष्यामि, लोकानां सुखहेतवे ।।
जिनेन्द्रा: खेचरा ज्ञेया, पूजनीया विधिक्रमात् ।
पुष्पैर्विलेपनैर्धूपैर्नैवेद्यैस्तुष्टिहेतवे ।
पद्मप्रभस्य मार्तण्डश्चन्द्रश्चन्द्रप्रभस्य च ।
वासुपूज्यस्य भूपुत्रो, बुधश्चाष्टजिनेशिनां ।।
विमलानन्तधर्मेश-शांतिकुन्थ्वरहनमि ।
वर्द्धमानजिनेन्द्राणां, पादपद्मं बुधो नमेत् ।।
ऋषभाजितसुपार्श्वा: साभिनन्दनशीतलौ ।
सुमति: सम्भवस्वामी, श्रेयांसेषु बृहस्पति: ।।
सुविधि: कथित: शुक्रे, सुव्रतश्च शनैश्चरै ।
नेमिनाथो भवेद्राहो:, केतु: श्रीमल्लिपार्श्वयो: ।।
जन्मलग्नं च राशिं च, यदि पीडयन्ति खेचरा: ।
तदा संपूजयेद् धीमान्-खेचरान् सह तान् जिनान्।।
भद्रबाहुगुरुर्वाग्मी, पंचम: श्रुतकेवली ।
विद्याप्रसादत: पूर्वं ग्रहशांतिविधि: कृता ।।
य: पठेत् प्रातरुत्थाय, शुचिर्भूत्वा समाहित: ।
विपत्तितो भवेच्छांति: क्षेमं तस्य पदे पदे ।।

प्रात:काल इस स्तोत्र का पाठ करने से क्रूरग्रह अपना असर नहीं करते। किसी ग्रह के असर होने पर 27 दिन तक प्रतिदिन 21 बार पाठ करने से अवश्य शान्ति होगी।

जैन रक्षा स्तोत्रम्

श्री जिनंभक्तितोनत्वा त्रैलोक्याह्लादकारकम् ।
जैनरक्षामहं वक्ष्ये देहिनां देह रक्षकम् ।।1 ।।
ॐ ह्रीं आदीश्वर: पातु शिरसि सर्वदा मम ।
ॐ ह्रीं श्री अजितो देवो भालं रक्षतु सर्वदा ।।2 ।।
नेत्रयो: रक्षको भूयात् ॐ आं क्रौं संभवो जिना: ।
रक्षेद् घ्राणेन्द्रिये ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं अभिनन्दन: ।।3 ।।
सुजिह्वे सुमुखे पातु सुमति: प्रणवान्वित: ।
कर्णयो: पातु ॐ ह्रीं श्रीं रक्त: पद्मप्रभ: प्रभु: ।।4 ।।
सुपार्श्व: सप्तम: पातु ग्रीवामां ह्रीं श्रियाश्रित: ।
पातु चन्द्रप्रभ: श्रीं ह्रीं क्रों पूर्व स्कंन्धयोर्मम ।।5 ।।
सुविधि शीतलो नाथो रक्षको करपंकजे ।
ॐ क्षां क्षीं क्षूं युतौ कामं चिदानन्दमयौ शुभौ ।।6 ।।
श्रेयांसो वासुपूज्यश्च हृदये सदयं सदा ।
भूयाद् रक्षाकरो वारं वारं श्री प्रणवान्वित: ।।7 ।।
विमलोऽनन्तनाथश्च मायाबीज समन्वितौ ।
उदरे सुन्दरे शश्वद् रक्षाया: कारकौ मतौ ।।8 ।।
श्री धर्मशान्तिनाथौ च नाभि पंके रुहे सताम् ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं हं संयुक्तौ पुन: पातां पुन: पुन: ।।9 ।।
श्री कुन्थु-अरनाथौ तु सुगुरु सुकटीतटे ।
भवेतामवकौ भूरि ॐ ह्रीं क्लीं सहितौ जिनौ ।।10 ।।
मे पातां चारू जंघाया श्री मल्लिमुनिसुव्रतौ ।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ततो ह्र: ब्लूं क्लीं श्री युक्तौ कृपाकरौ ।।11 ।।

यत्नतो रक्षकौ जानू श्री नमिनेमिनाथकौ ।
राजराजमती मुक्तौ प्रणवाक्षरपूर्वकौ ।।12 ।।
श्री पार्श्वेश महावीरौ पातां मां ह्रौं सुमानदौ ।
ॐ ह्रीं श्रीं च तथा भूं क्लीं ह्रां ह्रः श्रां श्रः युतौ जिनौ।।13।।
रक्षाकरा यथास्थाने भवन्तु जिननायकाः ।
कर्मक्षयकरा ध्याता भीतानां भयवारकाः ।।14 ।।
जैन रक्षां लिखित्वेमां मस्तके यस्तु धारयेत् ।
रविवद् दीप्यते लोके श्रीमान् विश्वप्रियो भवेत् ।।15।।
तस्योग्ररोगवेताला: शाकिनी भूतराक्षसाः ।
एते दोषा न दृष्यन्ते रक्षकाश्च भवन्त्यमी ।।16 ।।
अग्निसर्पभयोत्पाता भूपालाश्चोर विग्रहाः ।
एते दोषा प्रणश्यन्ति रक्षकाश्च भवन्त्यमी ।।17 ।।
जैन रक्षामिमां भक्त्या प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
इच्छितान् लभते कामान् सम्पदश्च पदे पदे ।।18 ।।
श्रावणे शुक्लेऽष्टम्यां प्रारम्भ स्तोत्रमुत्तमम् ।
अभिषेक जिनेन्द्राणां कुर्याच्च दिवसाष्टकम् ।।19 ।।
ब्रह्मचर्यं विधातव्यमेक भुक्तं तथैव च ।
शुचिता शुभ्रवस्त्रेण वालंकारेण शोभनम् ।।20 ।।
नरो वापि तथा नारी शुद्ध भावयुतोऽपि सन् ।
दिनं दिनं तथा कुर्यात् जाप्य सर्वार्थसिद्धये ।।21 ।।
एकायां तु विधातव्यम् उद्यापन महोत्सवम् ।
पूजाविधि समायुक्तं कर्तव्यसज्जनैर्जनै ।।22 ।।

।। इति जैन रक्षा स्तोत्रम् ।।

वज्रपंजर स्तोत्रम्

परमेष्ठी नमस्कारं सारं नव पदात्मकम् ।
आत्मरक्षाकरं मंत्र पंजरं संस्मराम्यहम् ।।
ॐ णमो अरहंताणं शिर स्कन्ध शिरसंस्थितम् ।
ॐ णमो सिद्धाणं मुखे मुख पटंवरम् ।
ॐ णमो आइरियाणं अंगं रक्षाति सायिणीम् ।
ॐ णमो उवज्झायाणं आयुधं हस्तयोर्दृढम् ।
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं मोचके पादयोः शुभे ।
एसो पंच णमोयारो शिववज्रमयी तले ।
सव्वपावप्पणासणो शिवज्रो वज्रमयो मही ।
मंगलाणं च सव्वेसिं वीतरागादि खातका ।
स्वाहा पंच पद ज्ञेय पढमं हवइ मंगलम् ।
वज्रो परिवज्रमयं ज्ञेयं विधानं देह रक्षणे ।
महाप्रभाव रक्षेयं क्षुद्रोपद्रव नाशिनी ।
परमेष्ठि पदोद्भुत्ता कथितापूर्व सूरिभिः ।
यश्चैवं कुरुते रक्षा परमेष्ठि पदैः सदा ।
तस्य तस्माद् भयं व्याधिराधिश्चापि कदाचिन् ।

***

जिन पंजर स्तोत्रम्

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं, अर्हद्भ्यो नमो नमः।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं, सिद्धेभ्यो नमो नमः ।।1 ।।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं, आचार्येभ्यो नमो नमः।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं, उपाध्यायेभ्यो नमो नमः ।।2 ।।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीं गौतम स्वामी प्रमुख सर्वसाधुभ्यो नमो नमः।

एष: पंच नमस्कारः सर्वपापक्षयंकरः।
मंगलाणं च सर्वेषां, प्रथमं भवति मंगलं ।।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं जये विजये, अर्हं परमात्मने नमः।
कमलप्रभ सूरींद्र-भाषितं जिनपंजरम् ।।3 ।।

एकं भुक्तोपवासेन, त्रिकालं यः पठेदिदम्।
मनोभिलषितं सर्वं, फलं स लभते ध्रुवं ।।
भूशायी ब्रह्मचर्य्येण, क्रोधलोभ विवर्जितः।
देवलाग्रे पवित्रात्मा, षण्मासैर्लभते फलं ।।4 ।।

अर्हन्स्थापयेन्मूर्ध्नि-सिद्धं चक्षुर्ललाटके ।
आचार्य श्रोत्रयोर्मध्ये, उपाध्यायन्तु नासिके ।।5 ।।

साधुवृंदं मुखस्याग्रे, मनः शुद्धिं विधाय च।
सूर्यचंद्रनिरोधेन, सुधीः सर्वार्थसिद्धये ।।6 ।।

दक्षिणे मदनद्वैषी, वामपार्श्वे स्थितो जिनः।
अंगसंधिषु सर्वज्ञः परमेष्ठी शिवकंरः ।।7 ।।

पूर्वस्यां जिनो रक्षेत् आग्नेय्यां विजितेन्द्रियः।
दक्षिणस्यां पर-ब्रह्म, नैऋत्यां च त्रिकालवित् ।।8 ।।

पश्चिमायां जगन्नाथो, वायव्ये परमेश्वरः।
उत्तरां तीर्थकृत्सर्व, ईशाने च निरंजनः ।।9 ।।

पातालं भगवान्नार्हन्, नाकाशे पुरुषोत्तमः।
रोहिणी प्रमुखा देव्यो, रक्षंतु सकलं कुलम् ।।10 ।।

ऋषभो मस्तकं रक्षेदजितोऽपि विलोचने ।
संभवः कर्णयुगले, नासिकां चाभिनन्दनः ।।11 ।।

ओष्ठौ श्री सुमति रक्षेत् दंतान्पद्प्रभो विभुः।
जिह्वां सुपार्श्वदेवोऽयं, तालु चंद्रप्रभाभिधः ।।12 ।।

कंठं श्रीसुविधि रक्षेत् हृदयं श्री सुशीतलः।
श्रेयांसो बाहुयुगलं, वासुपूज्यः कर-द्वयं ।।13 ।।

अंगुलीं विमलो रक्षेत्, अनंतोऽसौ नखानपि।
श्री धर्मोप्युदरास्थीनि, श्री शांतिर्नाभिमंडलं ।।14 ।।

श्री कुंथो गुह्यकं रक्षेत्, अरो रोमकटितले।
मल्लिरुरु पृष्टिवंशं, पिंडिकां मुनिसुव्रतः ।।15 ।।

पादांगुलिर्नमी रक्षेत् श्री नेमीश्चरणं द्वयम्।
श्री पार्श्वनाथः सर्वांगं, वर्द्धमानश्चिदात्मकम् ।।16 ।।

पृथ्वी जल तेजस्क, वाय्वाकाशमयं जगत्।
रक्षेदशेषमापेभ्यो, वीतरागो निरंजनः ।।17 ।।

राजद्वारे श्मशाने च, संग्रामे शत्रुसंकटे ।
व्याघ्रचौरादिसर्पादि, भूतप्रेतभयाश्रिते ।।18 ।।

अकाले मरणे प्राप्ते, दारिद्र्यापत्समाश्रिते ।
अपुत्रत्वे महादुःखे, मूर्खत्वे रोगपीडिते ।।19 ।।

डाकिनी शाकिनी ग्रस्ते, महाग्रहणादिते ।
नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये, व्यसने चापादि स्मरेत् ।।20 ।।

प्रातरेव समुत्थाय, यः पठेज्जिनपंजरं ।
तस्य किंचिद्भयं नास्ति, लभते सुखसम्पदः ।।21 ।।

जिनपंजरनामेदं यः, स्मरत्यनुवासरम् ।
कमलप्रभ राजेन्द्र, श्रीयं स लभते नरः ।।22 ।।

प्रातः समुत्थाय पठेत्कृतज्ञो, यः स्तोत्रमेतज्जिनपिंजरस्य ।
आसादयेत सः कमलप्रभाख्यं, लक्ष्मीं मनोवांछितपूरणाय ।।23 ।।

श्री रुद्रपल्लीय वरण्य एव गच्छे, देवप्रभाचार्यपदाब्जहंसः ।
वादीन्द्रचूडामणिरैष जैनो, जीयादसौ श्रीकमलप्रभाख्याः ।।24 ।।

विधि – शरीर शुद्धकर, शरीर को धूप देय, एक भुक्त उपवास करें। ब्रह्मचर्य से भूमि पर सोवे तथा कषाय रहित होकर त्रिकाल पढ़े, छह माह तक निरन्तर। पीछे अगर, गूगल, गोले से होम करें। पीछे माला 108 जपे।

***

लक्ष्मी स्तोत्र

लक्ष्मीर्महातुल्य सती सती सती, प्रबद्ध कालो विरतो रतो रतो।
जरा रूजा जन्म हता हता हता, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।1 ।।

अचैंर्य माद्यं सुमना मना मना, यः सर्वदेशे भुविना बिना बिना।
समस्त विज्ञान भयो भयो भयो, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।2 ।।

व्यनष्ट जतो शरणं रण रण, क्षमादितोयः कमठं मठं मठं।
नरामरा रामक्रमं क्रमं क्रमं, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।3 ।।

अज्ञान सत्काम लता लता लता, यदीय सद्भाव नता नता नता।
निर्वाण सौख्यं सुगता गता गता, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।4 ।।

विवादिता शेष विधि विधि विधि, र्वभृवसर्पावहरी हरि हरि।
त्रिज्ञान सद्ज्ञान हरो हरो हरो, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।5 ।।

यद्विश्वलौंकेक गुरुं गुरुं गुरुं, विराजतो येन वरं वरं वरं।
तमाल निलागं भरं भरं, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।6 ।।

सरंक्षतो दिग्भुवनं वनं वनं, विराजिता येषु दिवै दिवै दिवै।
पाद्द्वये नून सुरा सुरा सुरा, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।7 ।।

कराज्यनित्य सकला कला कला, ममार तृष्णो बृजिनो जिनो जिनो।
संहार पूज्य वृषभा सभा सभा, पार्श्व फणे राम गिरौ गिरौ गिरौ।।8 ।।

तर्क्के व्याकरण च नाटक च ये काव्याकुले कौशले,
विख्याती मुनि पद्मनन्द मुनयः तत्मस्य कोपनिधिः
गम्भीरं–यमंकाष्टकं भणति यः सभूय सा लभ्यते,
श्रीमदपद्मप्रभदे निर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलं ।।9 ।।

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै मम् सर्व सिद्धिं कुरु–कुरु स्वाहा।

।। इति श्री लक्ष्मी स्तोत्रम् ।।

पार्श्वनाथ स्तोत्र

ॐ नमः पार्श्वनाथाय विश्वचिन्तामणियुते ।
ह्रीं धरणेन्द्र वैरोट्या पद्मावती युतायुते ।।1।।

शान्ति तुष्टि महापुष्टि धृति-कीर्ति विद्यापिते ।
ॐ ह्रीं दिड्व्याल वेताल, सर्वाधि-व्याधिनाशिने ।।2।।

जया जिताख्या विजयाख्या पराजितयान्वितः ।
दिशांपाले ग्रहैर्यक्षेर्विद्यादेवी भिरन्वितः ।।3।।

ॐ असिआउसाय नमस् तत्र त्रैलोक्यनाथताम् ।
चतुः षष्ठि सुरेन्द्रास्ते, भासन्ते छत्रचामरैः ।।4।।

श्रीशंखेश्वरमण्डन् पार्श्वजिन ! प्रणतकल्पतरुकल्प ।
चूरय दुष्ट व्रातं, पूरय में वांछित नाथ ।।5।।

***

श्री उपसर्गहर पार्श्वनाथ स्तोत्र

(आचार्य भद्रबाहु स्वामी कृत)

उवसग्गहरं पासं, पासं वन्दामि कम्मघणमुक्कं ।
विसहर-विसनिन्ननासं, मंगल-कल्लाण आवासं ।।1।।

विसहर-फुलिंग-मंतं, कंठे धारइ जो सया मणुओ ।
तस्स गह-रोग-मारी, दुट्ठजरा जंति उवसामं ।।2।।

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होई ।
नर तिरिएसु वि जीवा, पावन्ति न दुक्ख-दोहग्गं ।।3।।

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिन्तामणि-कप्पपाय बब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ।।4।।

ॐ अमर तरु काम धेणु, चिन्तामणि-कामकुं भमाईए ।
सिरी पासनाह-सेवा, गयाण सव्वे वि दासत्तं ।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं ॐ तुह दंसणेण सामिय, पणासेइ रोग-सोग-दोहग्गं।
कप्पतरुमिव जायइ, ॐ तुह दंसणेण समफल हेउ स्वाहा ।।6।।

ॐ ह्रीं नमिऊण पणवसहियं, मायाबीएण धरणनागिंदं ।
सिरी कामराय कलियं, पासजिणंदं, नमंसामि ।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीं पास विसहर-विज्जामन्तेण झाण झाएज्जा ।
धरणे पउमादेवी, ॐ ह्रीं क्ष्मल्व्र्यं स्वाहा ।।8।।

ॐ थुणेमि पासं, ॐ ह्रीं पणमामि परमभत्तीए ।
अट्ठक्खर धरणिंदो, पउमावइ पयडिया कित्ती ।।9।।

ॐ नट्ठट्ठ-मयट्ठाणे-पणट्ठकम्मट्ठ-नट्ठ संसारे ।
परमट्ठ-निट्ठियट्ठे, अट्ठगुणाधीसरं वन्दे ।।10।।

इय संथुओ महायस ! भत्तिब्भर-निब्भरेण हियएण ।
ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे-भवे पास जिणचन्द ।।11।।

***

EH$Bgran H$m\$sh¡ AnZro H$ronrg~wbmZo Ho$ {bEŸ&
_m±H$s~rh| H$m\$sh¡ ~cQ>oH$rogwbmZo Ho$ {bEŸ&&
AZoH$ Iw{e`m± H$_h¡, EH$ J_^wbmZo Ho$ {bEŸ&
EH$ J_ H$m\$s h¡ OrdZ^a ébmZo Ho$ {bEŸ&&

चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र

श्री शारदाधार मुखारविन्दं सदा नवेंद्रा नत मौलिपादां।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।1।।

शशि प्रभाशीति यशो निवासं समाधि साम्राज्य सुखावकाशं।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।2।।

निराकृतारति कृतांत संग सन्मंडली मंडल सुन्दराङ्गम।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।3।।

अनल्प कल्याण सुधाब्धि चन्द्रं भावावली सूदन भाव केन्द्रं।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।4।।

कराल कल्पांत निवार कारं, कारूण्य पुण्याकार रीति पारं।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।5।।

क्रूरोपसर्ग परिर्हतुमेवं वांछा विधानं विगताय रांधा।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।6।।

निरासया निर्जित वीर मारं जगद्वित कृष्ण पुरावतारं।
चिन्तामणि चिन्तित कामरूपं पार्श्व प्रभुं नौमि निरस्तापापं।।7।।

अविरल कति लक्ष्मी सेन शिष्येन,
लक्ष्मी वितरण गणपूतं सोमसेनेन गीतं।
पठित विशद काय: पार्श्वनाथ स्तवं
य: सुकृत पद निधान सप्रयाति प्रधान।।

संकट निवारक पार्श्वनाथ स्तोत्रम्

ॐ नमो भगवते श्री पार्श्वनाथाय ह्रीं प्रगे।
धरणेन्द्र पद्मावति सहिताय सदा श्रिये।।1।।

अट्ठे मट्ठे तथा छुद्रे विघटे क्षुद्रमेवहि।
क्षुद्रास्त्मभय स्तम्भय स्वाहान्तैरेभिरक्षरम्।।2।।

पद्माष्टकदलोपेतं मायांक – जिन लांछितम्।
पत्र – मध्यान्तरालेषु पत्रोपरि यथाक्रमम्।।3।।

अष्टौ अष्टौ तथा चाष्टौ विन्यस्ताक्षर–मंडले।
तथाष्टशत जापेन ज्वरभेकान्तरादिकम्।।4।।

रिपु चोर महीपाल शाकिनी भूत सम्भवा:।
मरण्यं देहजां भीतिं हन्ति बद्धं भुजादिषु।।5।।

पुष्पमालां जपित्वा च मंत्रेणाष्ट–शताधिकम्।
प्रक्षिप्ता पोत कंठेषु भूत स्वम्भपदं भयम्।।6।।

गुग्गुलस्य गुटीनां च शतमष्टोत्तराहुतम्।
दुष्टमुच्चाटयेत सद्य: शान्तिं च कुरुते गृहे।।7।।

श्री पार्श्व जिन सिंहस्य, नील वर्णस्य संस्तवान्।
लभन्ते श्रेयसं सिद्धिं प्रकुर्वन् बांछितै: सह।।8।।

श्री–अश्वसेन–कुल–पंकज–भास्करस्य,
पद्मावति–धरणि–राजनि सेवितस्य।
वामांगजस्य पदमेस्तवाल्लभन्ते,
भव्याश्रियं शुभगतमपि, बांधितानि।।9।।

।। इति चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्रम्।।

श्री पार्श्वनाथस्तोत्रम्

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाथ शीशं।।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं, नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं।।1।।

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आगतैं नागतैं तू बचावै।।
महावीर तैं युद्ध में तू जितावै, महा रोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै।।2।।

दुखी दुःखहर्ता सुखी सुखकर्ता, सदा सेवकों को महानन्द भर्ता।।
हरे यक्षराक्षस भूतं पिशाचं, विषं डाकिनीविघ्न के भय अवाचं।।3।।

दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीन को तू भले पुत्र कीने।।
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता।।4।।

महाचोर को वज्र को भय निवारे, महापुण्य के पुंजतै तू उबारै।।
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा, महालोभशैलेश को वज्र भारा।।5।।

महा मोह अंधेर को ज्ञान भानं, महाकर्म कांतार को दौ प्रधानं।।
किये नाग–नागिन अधोलोकस्वामी, हस्योमान तू दैत्य को हो अकामी।।6।।

तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणि नाग एनं।।
पशु नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावै, महास्वर्गतै मुक्ति मैं तू बसावै।।7।।

करै लौह को हेम पाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।।
करै सेव ताकी करैं देव सेवा, सुने वैन सोही लहै ज्ञान मेवा।।8।।

जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरे ध्यान ताके सबै दोष भागै।।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपा तैं सरैं काज मेरे।।9।।

दोहा– गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान।।

।। इति समाप्तम् ।।

श्री चंडोग्रपार्श्वनाथ स्तोत्र

ॐ नमो अर्हते भगवते चंडोग्रपार्श्वतीर्थंकराय
धरणेन्द्र पद्मावती सहिताय सर्व दुरितोपद्रव
शांतिं कुरु कुरु ॐ ह्म्ल्व्र्यूं भम्ल्व्र्यूं म्म्ल्व्र्यूं र्यूं
रम्ल्व्र्यूं घम्ल्व्र्यूं भम्ल्व्र्यूं स्म्ल्व्र्यूं
ख्म्ल्व्र्यूं धनु धनु कंप कंप शीघ्रं शीघ्रं अवतर अवतर
आगच्छ आगच्छ त्रैलोक्यवार्तास्वरूपं
कथय कथय सहस्त्रकोटि देवराज ग्रहान्
उच्चाटय उच्चाटय नव कोटि गांधर्वराजान
उच्चाटय उच्चाटय सप्तकोटि भूतान् उच्चाटय उच्चाटय
षट्कोटि प्रेतान् उच्चाटय उच्चाटय पंच
कोटिपिशाचान् उच्चाटय उच्चाटय
चतुर्कोटि ब्रह्मराक्षसान् उच्चाटय उच्चाटय
त्रिकोटि अपस्मारान् उच्चाटय उच्चाटय
द्विकोटि अषृकुलि नागान् उच्चाटय उच्चाटय
एक कोटि हरिहर ब्रह्मादि देवतान्
उच्चाटय उच्चाटय ॐ दशदिशान बंधय बंधय
अनंत कोटि पर विद्यां छिंदय छिंदय
सर्वशत्रु गति मति प्राणं बंधय बंधय
आत्मविद्यां पूजय पूजय सर्ववात पित्त

कफ रोग छिंदय छिंदय भिंदय भिंदय सर्वदुष्टान्
सर्व दुष्ट ग्रहान् छिंद छिंद भिंद भिंद ॐ ह्रां
णमो अरिहंताणं ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं
ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं
ॐ ह्रः णमो लोए सव्व साहूणं
अरि चोरी मारी राउल घोरोपसर्ग
विनाशनाय ह्रूं फट् स्वाहाः

इति

श्री पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति

तुम से लागी लगन ले लो अपनी शरण।
पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा।।
निश दिन तुमको जपूँ, पर से नेहा तजूँ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा।।

अश्वसेन के राज दुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे।
सब से नेहा तोड़ा, जग से मुंह को मोड़ा, संयम थारा।।
मेटो-मेटो जी संकट हमारा।

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये।
आशा पूरो सदा दुःख नहीं पावे कदा सेवक धारा।।
मेटो-मेटो जी संकट हमारा।

जग के दुख की तो पखवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा।।
मेटो-मेटो जी संकट हमारा।

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊँ, जग के नाथ तुम्हे कैसे पाऊँ।
पंकज व्याकुल भया दर्शन बिन ये जिया लागे खारा।।
मेटो-मेटो जी संकट हमारा।

***

घण्टाकर्ण महावीर मंत्र स्तोत्र

ॐ क्रों ह्रीं श्रीं महावीर घण्टाकर्ण महाबली।
महारोगान् भयान् घोरान् नाशय नाशय।। द्रुतम्।।

सर्पादिकं विषं शीघ्रं जहि जहि।। विनाशय।।
शाकिनी भूतवेतालान् राक्षसांश्च निवारय।
त्वन्नाममंत्रजापेन, त्वन्नाममंत्रश्रवणेन च।
भूत भीतिर्महामारी, शीघ्रं नश्यतु मे ध्रुवम्।।
मंत्रस्य मंत्ररूपेण, यत्र त्वं तिष्ठसि ध्रुवम्।
तत्र शांतिं च तुष्टिं च, पुष्टिं कुरुष्व मंगलम्।।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महावीर, घंटाकर्ण महाबली।
सर्वोपद्रवसंरक्ष, दुष्टान् शत्रुं निवारय।।

शांति तुष्टिं पुष्टिं च, धन वृद्धिजयं कुरु।
दर्शनं देहि प्रत्यक्षं संरक्ष मे द्रुतम् सर्व संकटान्।।
रणे वने समुद्रे च रक्ष संरक्ष मे द्रुतम्।
अग्नि चोरादितो रक्षत्वन्नाम मंत्र जापतः।।
त्वन्नाम मंत्र यंत्रेण यथेष्टः सिद्धिः प्रजायताम्।
सर्वरोग विनाशं च कुरु मे देह रक्षणम्।।
ॐ क्रों ब्लूं ह्रीं महावीर घंटा कर्ण नमोस्तु ते ठः ठः ठः स्वाहा।।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महावीर, घंटाकर्ण महाबली
सर्वोपद्रवतो रक्ष, दुष्टान् शत्रु निवारय।।
शांतिं तुष्टिं च पुष्टिं च येन वृद्धिजयं कुरु।
दर्शनं देहि प्रत्यक्षं संरक्ष सर्व संकटान्।
रणे वने समुद्रे च रक्ष संरक्ष मे द्रुतम्
अग्नि चोरादितोरक्ष, त्वन्नाम मंत्रजापतः।
त्वन्नाम मंत्र यंत्रेण, स्वेषु सिद्धिः प्रजायताम्।
सर्वरोग विनाशं च, कुरु मे देह रक्षणम्।
ॐ क्रौं ब्लूं ह्रीं महावीर घंटाकर्ण
नमोस्तु ते ठः ठः ठः स्वाहा।
घंटा कर्ण महावीर क्षेत्रपाल महाबलः
शत्रून्स्थंभय वेगेन त्रासय भाषय द्रुतम्।

***

अथ घण्टाकरण मंत्र

ॐ घण्टाकर्णो महावीरः सर्वव्याधि विनाशकः।
विस्फोटकभयं प्राप्ते, रक्ष रक्ष महाबलः।।1।।
यत्र त्वं तिष्ठसे देव, लिखितोक्षरपंक्तिभिः।
रोगास्तत्र प्रणश्यन्ति, वातपित्तकफोद्भवाः।।2।।
तत्र राज्यभयं नास्ति, यान्ति कर्णे जपात्क्षयम्।
शाकिनी भूतवेताला, राक्षसाः प्रभवन्ति न।।3।।
नाकाले मरणं तस्य, न च सर्पेण दंश्यते।
अग्निचौरभयं नास्ति, ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं घण्टाकर्णः।
नमोस्तु ते। ॐ ठः ठः ठः स्वाहा।।4।।

विपत्ति नाशक चन्द्रप्रभः स्तोत्रम्

चन्द्रप्रभः प्रभादीशं चन्द्रशेखर चन्दनम्।
चन्द्र लक्ष्म्यांकं चन्द्रांकं चन्द्रबीजं नमोस्तुते।।1।।
ॐ ह्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभः श्रीं ह्रीं कुरु-कुरु स्वाहाः।
इष्ट सिद्धी महा ऋद्धि, तुष्टि पुष्टि करो मम।।2।।
द्वादश सहस्त्र जपतो वांछितार्थं फलप्रदः।
महंतं त्रिसंध्यं जपतः, सर्वातिव्याधिनाशनम्।।3।।
सुरा सुरेन्द्र सहितः श्री पांडव नृपस्तुते।
श्री चन्द्रप्रभ तीर्थेशं श्रियं चन्द्रो ज्वालां कुरु।।4।।
श्री चन्द्रप्रभु विधेयं, स्मृता मेय फलंप्रदा।
भवाब्धि ब्याधि विध्वंश, दायिनिमी वरप्रदा।।5।।

***

चैत्यालयाष्टक

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

श्री जिन भवन के दर्शन करके, भव तापों का होता नाश।
धन वैभव का भव्य जीव के, स्वयं आप ही होता वास।।
क्षीर नीर सम धवल सुउज्ज्वल, कोटि-कोटि शोभित होते।
ध्वजा प्रकर शोभित होता है, भव्यों की जड़ता खोते।।1।।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, भुवन एक लक्ष्मी को प्राप्त।
धर्म सरोवर वर्जित होता, महत् मुनि से सेवित आप्त।।
विद्याधर अरु अमर वंधुजन, का है मुक्ति रूप अनुराग।
दिव्य पुष्प अञ्जलि समूह से, शोभित है सारा भू-भाग।।2।।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, भवनादिक देवों में वास।
जग विख्यात स्वर्ग की गणिका, गीयमान गण का आवास।।
नाना मणी समूह से भासुर, विकसित किरणों का विस्तार।
महत् सुनिर्मल शुभम् सुशोभित, गवाक्ष शोभा का आधार।।3।।

श्री जिन भवनके दर्शन करके, सिद्ध यक्ष सुर अरु गंधर्व।
किन्नर कर में वेणु वीणा, लेकर बाद्य बजाते सर्व।।
नृत्य गान कर करें नमन नित, पूरब पश्चिम चारों ओर।
गगन और पृथ्वी में झूमें, भक्तिमय हो भाव विभोर।।4।।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, विलसत और विलोलित माल।
देखके विभ्रम हो जाता है, ललितालक है शुभम् कुलाल।।
मधुर बाद्य लय नृत्य विलासी, लीला चलद वलय अभिराम।
नुपूर से हो रम्यनाद अति, जिन चैत्यालय पूजा धाम।।5।।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, उज्ज्वल हेममणिमय भव्य।
हेम रत्नमय कलश सुचामर, दर्पण आदि सुमंगल द्रव्य।।
एक सौ आठ द्रव्य शुभ राजित, मणि मुक्तामय अपरंपार।
इत्यादिक शोभा से मण्डित, चैत्यालय है मंगलकार।।6।।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, श्रेष्ठ देव दारू कर्पूर।
चंदन तरु से प्राप्त सुगंधित, धूप मनोहर है भरपूर।
मेघ सुविघटित होता है ज्यों, गगन मध्य में शोभामान।
विमल शाल उत्तुंग सुकेतन, चंचल चलद है आभावान।।7।।

श्रीजिन भवन के दर्शन करके, धवल पत्र शोभित पावन।
छाया में रहते निमग्न तनु, यक्षकुमार सुमन भावन।।
दुग्ध फेन सम श्वेत सुचामर, पंक्तिबद्ध शोभित सुखधाम।
कांति युक्त भामण्डल अनुपम, प्रतिमा शोभित है अभिराम।।8।।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, विविध प्रकार पुष्प उपहार।
भूमि पर शोभित होते हैं, अति रमणीय सुरत्न अपार।।
नित्य बंसत तिलक सम आश्रय, हो प्राप्त शुभ अपरंपार।।
सफल सुमंगल चन्द्र मुनीन्द्रों से, वंदित है बारंबार।।9।।

मणि काञ्चनमय तुंग सुचित्रित, सिंहासन आदि जिनबिम्ब।
अति शोभा से युक्त जिनालय, कीर्तिमान होता प्रतिबिंब।।
'विशद' जिनालय देखा मैंने, आज महामह अपरंपार।
सफल सुमंगल चन्द्र मुनीन्द्रों, से वंदित है बारम्बार।।10।।

***

करुणाष्टक

(आचार्य पद्मनन्दि विरचित)

त्रिभुवन गुरो ! जिनेश्वर परमानन्दैककारण कुरुष्व।
मयि किङ्करेत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः ।।1 ।।

निर्विण्णोऽहं नितरामर्हन् बहु-दुक्खया भवस्थित्या।
अपुनर्भवाय भव हर, कुरु करुणामत्र मयि दीने ।।2 ।।

उद्धर माँ पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ।।3।।

त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश तेनाहम्।
मोह-रिपु-दलितमानं, फूत्कारं तव पुरः कुर्वे ।।4 ।।

ग्रामपतेरपि करुणा परेण केनाऽप्युपद्रुते पुंसि।
जगतां प्रभो न किं तव, जिनमयि खल-कर्मभिः प्रहते।।5 ।।

अपहर मम जन्म दयां कृत्वैत्येकवचसि वक्तव्ये।
तेनातिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वम् ।।4 ।।

तव जिनवर चरणाब्जयुग, करुणामृत-शीतलं यावत्।
संसारतापतप्तः करोमि, हृदि तावदेव सुखी ।।7 ।।

जगदेक-शरण ! भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनन्दितगुणौघ।
किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ।।8 ।।

।। इति।।

करुणाष्टक

-आचार्य श्री विशदसागरजी

(तर्ज- नित देव मेरी आत्मा...)

त्रिभुवन गुरो ! जिनवर परम्, आनंद कारण आप्त हो।
मुझ दास पर करुणा करो, अतिशीघ्र मुक्ति प्राप्त हो।।
तुम तरण तारण हो प्रभु, अब शरण अपनी लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।1 ।।

हे देव अर्हत् ! जगत् की, दुःखमय दशा को जानकर।
हो गया हूँ निर्विक्त मैं, इस जगत् को पहिचानकर।।
हो जन्म न फिर से प्रभु, अब शरण अपनी लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।2 ।।

हे देव अर्हत् ! भव भयंकर, कूप में मैं गिर गया।
तुम योग्य हो उससे निकालो, कीजिए मुझ पर दया।।
मैं पुनर्पुन विनती ये करता, शरण अपनी लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।3 ।।

हे देव ! तुम करुणानिधि हो, जगत् में तुम शरण हो।
मैंने पुकारा आपको तुम, श्रेष्ठ तारण तरण हो।।
मोह रिपु ने मद दलित, मेरा किया सुन लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।4 ।।

हे देव जिन ! पर के सताए, पुरुष पर करुणा करें।
ज्यों गाँवपति उर करुण होकर, और की विपदा हरें।।

त्रैलोक्यपति कर्मों से मेरी, आप रक्षा कीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।5।।

हे देव ! मेरा एक ही, वक्तव्य में यह है कथन।
करके दया अब मेंट दो, इस जगत से जीवन मरण।।
जिससे प्रलापी हो गया मैं, खेद वह हर लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।6।।

हे देव जिन ! मैं जगत् के, संताप से संतप्त हूँ।
चरणों की शीतल छाँव को, पाकर हुआ मैं तृप्त हूँ।।
अमृतमयी करुणा की छाया, में मुझे ले लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।7।।

हे ! पद्मनंदि गुरू से, स्तुत्य जग में इक शरण।
मैं आपके करता हूँ भगवन्, चरण में शत्-शत् नमन्।।
मैं कहूँ क्या ? अति दास को, अपनी शरण ले लीजिए।
करुणानिधि करुणा करो, भव पार हमको कीजिए।।8।।

❋❋❋

अद्याष्टक स्तोत्र

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम।
त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षय-सम्पदः।।1।।

अद्य संसार-गंभीर-पारावारः सुदुस्तरः।
सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।2।।

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।3।।

अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्व-मंगलम्।
संसारार्णव-तीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।4।।

अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम्।
दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।5।।

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादश-स्थिताः।
नष्टानि विघ्न-जालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।6।।

अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः।
सुखसङ्गं समापन्नो, जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।7।।

अद्य कर्माष्टकं नष्टं, दुःखोत्पादन-कारकम्।
सुखाम्भोधि-निमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।8।।

अद्य मिथ्यान्धकारस्य, हन्ता ज्ञान-दिवाकरः।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन्, जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।9।।

अद्याहं सुकृतीभूतो, निर्धूताशेष-कल्मषः।
भुवन-त्रय-पूज्योऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।10।।

अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दित-मानसः।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात्।।11।।

।। इति ।।

अद्याष्टक

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

तर्ज – नित देव मेरी आत्मा

हे देव ! दर्शन आपका कर, जन्म मेरा सफल है।
शुभसंपदा अक्षय जो पाई, दर्श का ही सुफल है।।
नयन आज सफल हुए हैं, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।1।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, अति गहन अपार है।
पार क्षण भर में मिला जो, गहन अति संसार है।।
पार होना है सरल अब, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।2।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, नेत्र निर्मल हो गये।
सद्धर्म तीरथ में नहाकर, कर्म सारे खो गये।।
आज तन मेरा धुला है, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।3।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, सफल मेरा जन्म है।
पार भवसागर का मिला यह, दर्श का ही सुफल है।।
सर्व मंगल पा लिए हैं, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।4।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, कर्म की ज्वाला जली।
आज यह अतिशय हुआ, वसु कर्म की सेना चली।।
दुर्गती से मुक्ति जो पाई, हृदय मम् भक्ति जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।5।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, विघ्न सारे नश गये।
आज सब ग्रह सौम्य होकर, इक जगह में बस गये।।
ग्रह एकादश शांत करने, की लगन मन में जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।6।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, घोर दुःखदायक महा।
दुष्कर्म का बंधन बंधा था, आज वह भी न रहा।।
जीवन सुखी हो गया है अरु, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।7।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, आज दुःखदायी सभी।
दुष्कर्म आठों नश गये हैं, दर्श करते ही अभी।।
शुभ सौख्य सागर में मगन हो, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।8।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, तिमिर मिथ्या देह से।
नश गया है आज सारा, चेतना के गेह से।।
ज्ञान का आलोक पाया, शुभ भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।9।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, पुण्यात्मन् हो गया।
आज मेरा आत्मा से पाप, मल सब खो गया।।
हो गया त्रैलोक्य पूज्य, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।10।।

हे देव ! दर्शन आपका कर, अद्य अष्टक जो पढ़े।
प्रमुदित हृदय से मोक्ष पथ पर, शीघ्रता से वह बढ़े।।
सब ही प्रयोजन सिद्ध हों यह, 'विशद' भक्ति उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टि, आपके मेरी लगी।।11।।

जिनाष्टक स्तोत्र

गत्वा क्षितेर्वियति पंच सहस्र दण्डान्,
सोपान-विंशतिसहस्र-विराजमाना ।।
रेजे सभा धनद यक्षकृता यदीया,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।1 ।।

सालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि सालो-
वेदिश्च साल इह वेदिरथोऽपि सालः ।
वेदिश्च भाति सदसि क्रमतो यदीये,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।2 ।।

प्रासाद-चैत्य-निलया: परिखात-वल्ली,
प्रोद्यान केतु सुरवृक्ष गृहाङ्गणाश्च ।
पीठत्रयं सदसि यस्य सदा विभाति,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।3 ।।

माला-मृगेन्द्र-कमलाम्बर वैनतेय-
मातंग गोपतिरथांग-मयूरहंसाः ।
यस्य ध्वजा-विजयिनो भुवने विभान्ति,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।4 ।।

निर्ग्रंथ-कल्प-वनिता-व्रतिका-भ- भौम-
नागस्त्रियो भवन-भौम-भ-कल्पदेवाः ।
कोष्ठस्थिता नृ-पशवोऽपि नमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।5 ।।

भाषा-प्रभा-वलयविष्टर-पुष्पवृष्टिः,
पिण्डि-द्रुमस्-त्रिदश-दुन्दुभि-चामराणि ।

छत्रत्रयेण सहितानि लसन्ति यस्य,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।6 ।।

भृंगार-ताल-कलश-ध्वज-सुप्रतीक-
श्वेतातपत्र-वर-दर्पण-चामराणि ।
प्रत्येक-मष्टशतकानि विभान्ति यस्य,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।7 ।।

स्तंभ-प्रतौलि-निधि-मार्ग-तडाग-वापी
क्रीडाद्रि-धूप-घट-तोरण-नाट्य-शालाः ।
स्तूपाश्च चैत्य-तरवो-विलसन्ति यस्य,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।8 ।।

सेनापति स्थपति-हर्म्यपति-द्विपाश्व-
स्त्री-चक्र-चर्म-मणि-काकिणिका-पुरोघाः ।
छत्रासि-दण्डपतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।9 ।।

पद्मः कालो महाकालः सर्वरत्नश्च पांडुकः,
नैसर्पो माणवः शंखः पिंगलो निधयो नव ।
एतेषां पतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्-त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।10 ।।

खविय-घण-घाइ-कम्मा,
चउतीसातिसय विसेस पंच कल्लाण ।
अट्ठ-वर-पाडिहेरा,
अरिहंता मंगला मज्झं ।।11 ।।

(इति जिनाष्टक स्तोत्र)

जिनाष्टक

–आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

पृथ्वी से आकाश में जाकर, धनुष पञ्च हजार प्रमाण।
बीस हजार सीढ़ियों के भी, ऊपर श्रीजिन का स्थान।।
धन कुबेर ने समवशरण की, सभा का कीन्हा है विस्तार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।1।।

धूलि साल के बाद वेदिका, वेदी के भी आगे साल।
वेदी साल अरु वेदी रथ के, बाद में शोभित होता साल।।
क्रमशः वेदी शोभित होती, आगे इसी तरह विस्तार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।2।।

चैत्यालय प्रासाद खातिका, लता और पावन केतु।
कल्पवृक्ष गृह सप्त भूमियाँ, बारह सभा प्रवचन हेतु।।
इसके ऊपर तीन पीठिका, शोभित होती हैं मनहार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।3।।

गरुण और कमलांबर माला, हंस मृगेन्द्र मयूर मतंग।
गोपति रथ से चिह्नित ध्वज दश, लहराती होके निःसंग।।
विजय पताका समवशरण की, फहराती है मंगलकार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।4।।

मुनी कल्प बनिता वृतिका, भ भौम नाग स्त्री सारी।
भवन भौम भ कल्पदेव सब, होते हैं ऋद्धीधारी।।
नर पशु भी कोठों में स्थित, शीष झुकाते बारम्बार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।5।।

कल्पवृक्ष दुन्दुभि सिंहासन, भामण्डल चाँवर तिय छत्र।
पुष्प वृष्टि अरु दिव्य ध्वनियुत, प्रातिहार्य वसु शुभ सर्वत्र।।
समवशरण शोभित होता है, सम्यक्दर्शन का आधार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।6।।

पंखा झारी कलश सुदर्पण, सुप्रतीक है शोभामान।
छत्र त्रय ध्वज चामर सुंदर, इनका कौन करे गुणगान।।
अष्ट शतक प्रत्येक सुशोभित, द्रव्य विराजित मंगलकार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।7।।

निधी मार्ग स्तंभ सुगोपुर, वापी चैत्य नाट्यशाला।
चैत्य स्तूप तालाब धूप घट, तोरण शुभ फूलों वाला।।
क्रीडापर्वत तरुवर अनुपम, जिनगृह का सुंदर शृंगार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।8।।

सेनापति घोड़ा अरु हाथी, स्त्री और कांकिड़ी रत्न।
कारीगर अरु हर्म्यपति असि, दण्ड छत्र चूड़ामणि रत्न।।
चक्र सुदर्शन और पुरोहित, के स्वामी झुकते चरणार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।9।।

पद्म काल अरु महाकाल शुभ, सर्वरत्न पाण्डु पिंगल।
शंख और नैसर्प सुमाणव, नव निधियाँ होती मंगल।।
इनके स्वामी चरणों झुकते, इन सबके हो तारणहार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।10।।

घातिकर्म को नाश किया है, चौबीस अतिशय भी पाए।
अनंत चतुष्टय सहित हुए हैं, प्रातिहार्य वसु उपजाए।।
कल्याणक पाए पांचों ही, करो 'विशद' हमको भवपार।
तीन लोक के नाथ आपके, चरणों वंदन शत्–शत् बार।।11।।

***

निरंजन स्तोत्र

स्थानं न मानं न च नाद-विंदुं, रूपं न रेखं न च वर्ण-वर्णं।
दृष्टं न नष्टं न श्रुतं न स्तोत्रं, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।1।।

श्वेतं न पीतं न च रक्त-श्यामं, हेमं न रूप्यं न च धातु-वर्णं।
चन्द्रार्क वह्नि उदयो न अस्तं, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।2।।

वेदं न शास्त्रं नियमं न संध्या, मंत्रं न तंत्रं न च देह-ध्यानं।
होमं न जाप्यं न च देव-पूजा, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।3।।

न पंचभूतं न च सप्त-स्वरं न, देशी विदेशी न च मेरु-मंदिरं।
ब्रह्मा न इन्द्रो न च विष्णु रुद्रो, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।4।।

ब्रह्माण्ड-खण्डं न च अण्डं-दण्डं, कृष्णं न नीलं न च मुण्ड-पिण्डं।
ग्रहं न तारा न च मेघ-जालं, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।5।।

स्थूलं न सूक्ष्मं न च शीत-उष्णं, गुरु न शिष्यं न च मोह-मायं।
आशा न तृष्णा न भयं न लज्जा, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।6।।

वृक्षं न मूलं न च बीजमंकुरं, शाखा न पत्रा न च बल्लि-पल्ली।
पुष्प न गधं न फलं न छाया, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।7।।

अधो न ऊर्ध्वं न शिवं न शक्ति, नारी न पुरुषं न च लिंगमूर्तिः।
हस्तं न देहं न तु पाद-छाया, तस्मै नमो देव निरंजनाय।।8।।

अनेक पाप नाशं च, निरंजनाष्टकं पठेत्।
सर्वसिद्धिर्भवेद्यस्य, शिवलोके स गच्छति।।9।।

।। इति ।।

एकीभाव स्तोत्र

एकमेक होकर नितान्त जो, मानो स्वयं हुआ अनिवार्य।
ऐसा कर्म-प्रबन्ध भवों तक, दुख देने का करता कार्य।।
उससे पिण्ड छुड़ा सकती जब, हे जिन-सूर्य आपकी भक्ति।
तो फिर कौन अन्य भवतापी, जिन पर वह अजमावे शक्ति।।1।।

''पाप-पुंज रूपी अँधियारे, के विनाश के हेतु मशाल।
आप कहे जाते हैं जिनवर'', तत्त्वज्ञों द्वारा चिरकाल।।
मेरे मन-मन्दिर में जब तक, है ज्योतिर्मय तेरा वास।
तब तक कैसे पाप-तिमिर को, उसमें मिल सकता अवकाश।।2।।

टप-टप गिरे हर्ष के आँसू, उनसे अपना मुख धोया।
दृढ़ मन होकर गद्गद् स्वर से, मन्त्र कीर्तन संजोया।।
काया की बाँबी में बसते, थे नाना रोगों के नाग।
वे अपनी चिर जगह छोड़कर, गये शीघ्र अब बाहर भाग।।3।।

भव्यों के सौभाग्य उदय से, आप स्वर्ग से करें प्रयाण।
उसके पहिले यहाँ सुरों ने, स्वर्णिम किया गर्भ-कल्याण।।
मेरे मनहर मन-मन्दिर में, ध्यान-द्वार से यदि आवें।
तो क्या अचरज देव ! कोढ़ि की, कञ्चन काया कर जावें।।4।।

लोकहितैषी एकमात्र हैं, बन्धु आप ही निष्कारण।
सर्व विषयगत शक्ति आपमें, ही है जिनवर ! निरावरण।।

आओ पधारो ! बिछी हुई है, भक्ति खचित यह मनकी सेज।
पर कैसे तब धीर धरेंगे, जब निकलेंगी आहें तेज।।5।।

भवारण्य में बहुत समय तक, रहा स्वयं को भटकाता।
जैसे तैसे मिल पाई तव, सुधा-बावड़ी नय-गाथा।।
वह इतनी शीतल है जितना, बर्फ चन्द्र या चन्दन अब।
डुबकी उसमें लगा चुका हूँ, नहीं तापका बन्धन अब।।6।।

कदम-कदम पर बिछते जाते, कमल पांवडे देव पुनीत।
सुरभित स्वर्णिम हो जाते जब, श्रीविहार से लोकपुनीत।।
तब मेरा मन छू ले यदि, सर्वाङ्ग रूप से तुमको देव !
अहा ! कौन सा कल्याणक फिर, प्राप्त नहीं होगा स्वयमेव।।7।।

देखा जाता है कि तुम्हें जो, भक्त निहारा करते हैं।
कर्मभूमि से निकल काम को, भू पर मारा करते हैं।।
भक्तिरूप अँजुलि में भरकर, तब वचनामृत जो पीते।
भूलुंठित कर क्रूर-रोग को, निष्कंटक सुख से जीते।।8।।

पत्थर का खम्भा कोई तो ? मानथम्भपाषाण हृदय।
मूर्तिमान हैं रत्न यही बस, वैसे ढेरों रत्नत्रय।।
ज्यों ही सम्यक् दृष्टि पड़ी उस, पर त्यों ही अभिमान गला।
निकट भव्यता की ऐसी, पावे तो कोई शक्ति भला?।।9।।

तेरी मूरत कायागिरि को, छूकर बहती हुई पवन।
धूल उड़ाती रोगों की जन, मानस में कर संचारण।।

फिर जिस हृदय-कमल के तुम हो, ध्यानामंत्रित अभ्यागत।
उसको किस लौकिक भलाई की, प्राप्त नहीं प्रभुवर ! ताकत।।10।।

तुम्हीं जानते जैसे जो जो, जनम जनम के कष्ट सहे।
उनके संस्मरण भी मुझको, मानो भाले चुभा रहे।।
सर्वेश्वर करुणाकर ! हो प्रभु, अतः भक्तिवश तव शरणम्।
मुझे सभी कुछ प्रामाणिक है, जैसा जो कुछ करणीयम्।।11।।

णमोकार के मूलमन्त्र को, कुत्सित कुत्ता मरणासन्न।
जीवन्धर द्वारा पाते ही, हुआ देव जब सुख-सम्पन्न।।
तो मणिमालाओं द्वारा पद, नमस्कार मन्त्रों का जाप्य।
करने वाले पुरुषों को सच, इन्द्रों का भी वैभव प्राप्य।।12।।

मोहरूप-मुद्रा के कारण, मुक्तिद्वार के बन्द कपाट।
कैसे खुल सकते मुमुक्षु के, द्वारा कुञ्जीहित विराट।।
सम्यग्दर्शन भक्ति-रूपिणी, कुञ्जी सुखदा पास न हो।
ज्ञान भले ही विमल रहो, आचरण भले ही शुद्ध रहो।।13।।

ढका हुआ चहुँ ओर पाप के, घोर अंधेरे में शिव-पन्थ।
दुःखरूपी गहरे गड्ढों से, ऊबड़-खाबड़ है अत्यन्त।।
आगे आगे तत्त्व-दर्शिका, दीपक-मणि यदि जिनवाणी।
होती नहीं मार्ग पर कैसे, चल सकते सुख से प्राणी।।14।।

कर्मभूमि के तहखानों में, गड़ा-पड़ा अक्षुण्ण खजाना।
हर्षित आत्मज्योतिनिधि-दृष्टा, वाममार्गियों अनजाना।।
भक्त भेदिया करें हस्तगत, निश्चय ही उसको तत्काल।
खोदें कर्मभूमि की पर्तें, कठिन हाथ ले विनय-कुदाल।।15।।

अनेकान्तरूपी हिमगिरि से, देव ! भक्ति-गंगा निकली।
चूम-चूम श्रीचरण-कमल को, शिवसागर में पुनः मिली।।
मेरे मन का मैल धुल गया, उसमें अवगाहन करके।
क्या संदेह ? रहा आऊँगा, निर्मल मन-पावन करके।।16।।

''शाश्वत सुखपदप्रकटरूपप्रभु''! ऐसा करते ध्यान ध्यान।
निर्विकल्प मति छा जाती है, ''मैं भी हूँ सोऽहम् भगवान''।।
झूठ बात-''भगवान कहाँ हूँ?'' किन्तु चैन इससे मिलती।
तेरी अनुकम्पा से छद-मस्थों, की भी वांछा फलती।।17।।

जिनवाणी रूपी समुद्र कर, रह व्याप्त भू-मण्डल को।
सप्तभङ्ग की तरल तरंगे, हटा रहीं मिथ्या-मल को।।
मन-सुमेरु रूपी मथनी से, किया गया सागर-मन्थन।
तृप्त करेगा विज्ञजनों को, देवोपम अमृत-सेवन।।18।।

जो स्वभावतः ही कुरूप है, उसे चाहिए गहने वस्त्र।
जिसे शत्रु से खटका रहता, वही ग्रहण करता है अस्त्र।।
तुम सर्वाङ्ग रूप से सुन्दर, तथा अजात-शत्रु जिनदेव।
अस्त्र-शस्त्र या वस्त्राभूषण, सज्जा व्यर्थ तुम्हें स्वयमेव।।19।।

''इन्द्र आपकी सेवा करता, भली-भाँति'' क्या हुई बड़ाई?
किन्तु इन्द्र ने ऐसा करके, निजी प्रशंसा अभव बढ़ाई?
भव-सागर से पार करैया, तुम शिव-रमणी के भगवान !
इसी प्रशंसा से हो सकता, लोकेश्वर का गौरव-गान।।20।।

जड़ शब्दों की प्रवृति और है, निज स्वरूप चिन्मय कुछ और।
ऐसे पहुँच सकेंगे तुम तक, वाक्य हमारे है सिरमौर।।
भले न पहुँचे भक्ति-सुधा में, पगे हुए भीने उद्गार।
भव्यों को तो बन जावेंगे, कल्पवृक्ष वाँछित दातार।।21।।

नहीं किसी पर अनुकम्पा है, नहीं किसी पर किञ्चितरोष।
चित्त आपका सचमुच सबसे, उदासीन एवं निर्दोष।।
तो भी बैर भुलाने वाला, विश्वबन्धु-मय अनुशासन।
नहीं किसी के पास मिलेगा, आप सरीखा हे ! भगवन्।।22।।

अप्सराओं के द्वारा गाया, गया आपका गौरव-गान।
सकल विषय गत मूर्तिमान है, देव आपका केवल-ज्ञान।।
उस मुमुक्षु को शिव-मग, टेढ़ा-मेढ़ा नहीं लगा करता।
मूढ़ न होता तात्त्विक चर्चा, में रखता जो तत्परता।।23।।

अतुल चतुष्टय रूप आपका, समा गया जिसके मन में।
सादर समयसारता पूर्वक, जो तल्लीन कीर्तन में।।
पुण्यवान वह गायन से ही, तय करता श्रेयस मंजिल।
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष फिर, जाते उसको पाँचों मिल।।24।।

अहो भक्त इन्द्रों से पूजित, चरण आपके अपरम्पार।
सूक्ष्मज्ञानदर्शी मुनि यति भी, जिनगुण गायन में लाचार।।
मन्दबुद्धि हम कहाँ विचारे, फिर भी एक बहाना यह।
कल्पवृक्ष है, आत्म सुखद है, तब प्रशस्ति है गाना यह।।25।।

***

विषापहार स्तोत्र भाषा

(श्री 'कुमुद' वा 'पुष्पेन्दु' खुरई प्रणीत)

हो आत्म-रूप में संस्थित, त्रिभुवन के भी गामी।
व्यापारों के हो वेत्ता भी, अपरिग्रही जिन-स्वामी।।
दीर्घायु सहित भी होकर, नित वृद्धावस्था-विरहित।
अतिश्रेष्ठ पुराण नरोत्तम, अब करें नाश से रक्षित।।1।।

जिसने ही अन्य विचिन्तित, युग-भार अकेले धारा।
एवं जिनका गुण-कीर्तन, सम्भव न मुनीन्द्रों द्वारा।।
अभिनन्दनीय हैं मेरे, अब वही वृषभ दुख-हर्ता।
रवि के अभाव में प्रभुवर, क्या दीप प्रवेश न कर्ता।।2।।

तव संस्तुति करने का भी, मद त्याग चुका है सुरपति।
पर मैं तव गुण गाने का, उद्योग न तजता जिनपति।।
वातायन सम ही सीमित, निज अल्पज्ञान से इस क्षण।
करता हूँ उनसे विस्तृत, अति व्यापक अर्थ निरूपण।।3।।

वैयाकरण और नैयायिक, कविगण एवं सन्त सहाय।
वादिराज की तुलना में हैं, चारों के चारों निरुपाय।।
भूधर की भूधरली शिर पर, किया पद्यमय यह अनुवाद।
कुमुद और पुष्पेन्दु युगल ने, पाकर गुरु का परम प्रसाद।।4।।

हैं आप सभी के दृष्टा, सबसे किन्तु अदर्शित।
वेत्ता भी आप सभी के, पर सबसे ही हैं अविदित।।

'प्रभु, कैसे हैं ? कितने हैं?', यह बता न सकते ज्ञानी।
तव संस्तुति से हो मेरी, ही प्रकट अशक्ति कहानी।।5।।

जो शिशुओं सम हैं व्याकुल, निजदोष राशि के कारण।
कर दिये आपने उनके, सारे भव-रोग निवारण।।
जो मूढ़ नहीं कर सकते, हित और अहित का निर्णय।
जिनराज ! आप ही उनके, तो बाल-वैद्य हैं निश्चय।।6।।

कुछ देता न किसी को एवं, कुछ हरण न करता दिनकर।
बस 'आज' और 'कल' यों ही, आशाएँ वह दिखलाकर।।
असमर्थ दिवस खो देता, प्रतिदिन ही जगती को छल।
पर आप शीघ्र तन जन को, दे देते मनवांछित फल।।7।।

अनुकूल आपके चलता, जो प्राणी वह सुख पाता।
रहता प्रतिकूल तथा जो, वह अगणित दु:ख उठाता।।
पर आप सदा ही दोनों, के आगे भी दर्पण-सम।
अवदात कान्ति से लगते हैं, एक सदृश सुन्दरतम।।8।।

सागर का तो गहरापन, बस सागर तक मर्यादित।
ऊँचाई मेरु अचल की, है मात्र उसी तक सीमित।।
विस्तार उसी विधि सीमित, वसुधा-तल और गगन के।
पर तव गुणौघ से पूरित, कण-कण भी तीन भुवन के।।9।।

सिद्धान्त आपका प्रभुवर !, है यथार्थ अनवस्था।
एवं न आपने घोषित- की, पुनरागमन अवस्था।।
इह लौकिक सुख को तजकर, परलोक-सौख्य अभिलाषी।
यों आप उचिततामय हैं, हो मात्र विरोधाभासी।।10।।

वस्तुतः आपके द्वारा-ही, काम हुआ है मर्दित।
यदि कहें शम्भु को तो वे, फिर हुए मनोज कलंकित।।
स्वयमेव विष्णु भी सोये, हो लक्ष्मीजी से प्रेरित।
क्यों ग्राह्य हुए हैं ये जब, अविराम आप हैं जागृत।।11।।

ब्रह्मादि देव हों निर्मल, या अन्य देव सविकारी।
पर उनके दोष-कथन से, कुछ गरिमा नहीं तुम्हारी।।
कारण समुद्र की महिमा, होती स्वभावतः जिनवर।
पर सिद्ध नहीं हो जाती, सरवर को छोटा कहकर।।12।।

इस कर्म-पिण्ड को भव-भव, में जीव साथ ले जाता।
औ, कर्म-पिण्ड भी उसको, हर गति में साथ घुमाता।।
यों देव ! आपने भव-जल, में नौका नाविक सम ही।
नेतृत्व परस्पर कहकर, बतलाया सत्य नियम ही।।13।।

ज्यों तैल प्राप्त करने को, शिशु पेला करते रजकण।
त्यों देव ! आपके शासन से, विमुख अनेकों नर-गण।।
सुख की इच्छा से दुख को, गुणाभिलाष से दुष्कृत।
औ, धर्म हेतु ही पापों, को प्रतिदिन करते संचित।।14।।

अति विस्मय है विषहारक, मणि औषधि-मन्त्र-रसायन।
के हेतु विश्व में भटका, करते हैं भोले जग-जन।।
पर, आप मन्त्र-मणि औषधि, यह नहीं ध्यान में लाते।
ये क्योंकि आपके ही तो, पर्यायी नाम कहाते।।15।।

हे देव ! आप निज मन में, स्वयमेव न कुछ भी करते।
पर जो जन अपने उर में, सामोद आपको धरते।।
उनने समस्त ही जग को, कर लिया हाथ में संचित।
आश्चर्य ! आप तो चेतन से, विरहित हो भी जीवित।।16।।

त्रय-काल तत्त्व के ज्ञाता, एवं त्रिलोक के स्वामी।
उनकी निश्चितता से ही, यही संख्या है अनुगामी।।
पर नहीं ज्ञान के शासन-के प्रति यह संख्या समुचित।
कारण कि और यदि होते, हो जाते तो अन्तर्हित।।17।।

सुरपुर के स्वामी की वह, सुन्दर सेना मनहारी।
उपकारी न आपकी है, हे ! आगम-रूप के धारी।।
पर अगमरूप मय दिनकर, को छत्र लगाने वाले।
सम उसी इन्द्र को देती, है आत्मिक सौख्य निराले।।18।।

निर्मोही आप कहाँ तो, है कहाँ सुखद उपदेशन।
यह सही, कहाँ पर सम्भव, इच्छा विपरीत निरूपन।।
इच्छा-विपरीत कहाँ यह, है कहाँ लोक-रञ्जकता।
यों है विरोध, इस कारण, सद्रूप नहीं कह सकता।।19।।

जो फल तुरन्त मिल जाता, दानी निष्किंचन जन से।
वह नहीं प्राप्त हो सकता, धनशाली लोभी जन से।।
ज्यों अगणित सरित् निकलती, जलविरहित अद्रिशिखर से।
पर देव ! एक भी सरिता, बहती न कभी सागर से।।20।।

जो तीनों ही लोकों के, सेवार्थ नियम के कारण।
सुरपति ने अधिक विनय से, वह दण्ड किया था धारण।।

यों प्रातिहार्य हो उसको, पर नहीं आपको संभव।
पर कर्मयोग से वह ही, हो नाथ आपको संभव।।21।।

निर्धन जन लक्ष्मीशाली, को देखा करते सादर।
पर सिवा आपके निर्धन, को धनी न देते आदर।।
है सत्य यथा तिमिरावस्थित, को प्रकाशस्थ दिखलाता।
त्यों प्रकाशस्थ तिमिरावस्थित, को नहीं देखने पाता।।22।।

प्रत्यक्ष वृद्धि उच्छ्वासों वा, दृग ज्योति आदि के भाजन।
अपने स्वरूप के अनुभव की, शक्ति न रखते जो जन।।
वे सकल विश्व के ज्ञायक, सज्ज्ञानमयी गुण-सागर।
अध्यक्ष आपको कैसे, समझेंगे हे ! जिनवर।।23।।

हैं आप नाभि के नंदन, या पिता भरत के जिनवर।
यों वंश आपके कहकर, अपमानित करते जो नर।।
वे अब भी करगत सोने, को पत्थर-जन्य समझकर।
फिर अवश्य तज देते, उसको भी पत्थर कहकर।।24।।

त्रिभुवन में मोह-सुभट ने, जो जय का पटह बजाया।
सब हुये तिरस्कृत उससे, पर लाभ मोह ने पाया।।
पर उसे आपके सम्मुख, तो पड़ा पराजित होना।
है सत्य-सबल का रिपु बन, निज को समूल हो खोना।।25।।

हे नाथ ! आपने देखा, है मुक्ति-मार्ग ही केवल।
पर औरों ने तो देखी, हैं चारों गतियों की हलचल।।

अतएव सभी कुछ मैंने, देखा है ऐसा कहकर।
निज-भुजा आपने मद से, देखी न कभी भी जिनवर।।26।।

है राहु सूर्य का ग्राहक, जल पावक का संहारक।
कल्पान्त काल का भीषण, मारुत है सागर-नाशक।।
औ, विरह-भाव इस जग के, भोगों का करता क्षय है।
यों सिवा आपके होता, सबका अरि-संग उदय है।।27।।

प्रभु ! बिना आपको जाने, विजयी फल पाता जैसा।
औरों को देव समझकर, पाता न कभी फल वैसा।।
शुचि मणि को कांच समझकर, ही धरने वाला सज्जन।
मणि समझ मणी के धर्त्ता से, ही नहीं कभी भी निर्धन।।28।।

व्यवहार-कुशल पटु-वक्ता, चारों कषाय से दहते।
अनुरागी द्वेषी जन को, भी देव निरन्तर कहते।।
ज्यों बुझे हुए दीपक को, कहते हैं 'दीप बड़ा है'।
अथवा 'कल्याण' बताते, जब जाता फूट घड़ा है।।29।।

एकार्थ आपके वर्णित, नानार्थों के प्रतिपादक।
त्रिभुवन हितकारी वचनों को, सुनकर कौन विचारक।।
तव निर्दोषत्व न तत्क्षण, प्रभुवर अनुभव का पाता।
सच है, ज्वर-विरहित रोगी, स्वर से सुगम्य हो जाता।।30।।

इच्छा न आपकी कुछ भी, पर खिरते वचन स्वयं ही।
सच, किसी काल में वैसा, होता है कभी नियम ही।।
ज्यों शशि न सोच यह उगता, मैं करूँ सिन्धु को पूरित।
पर वह स्वभावतः प्रतिदिन, रजनी में होता समुदित।।31।।

हे नाथ ! आपके गुण-गण, अनुपम गम्भीर अपरिमित।
उत्कृष्ट समुज्ज्वल एवं, नाना प्रकार के अगणित।।
यों अन्त दिखाता उनका, पर नहीं स्तवन में जिनवर।
गुण अन्य, गुणों का क्या अब, हो सकता इससे बढ़कर।।32।।

मनवाञ्छित सिद्ध न होता, है केवल संस्तुति से ही।
पर होता सिद्ध सुसंस्मृति, सद्भक्ति नमस्कृति से भी।।
अतएव आपको भजता, ध्याता नत होता प्रतिपल।
कारण कि किसी भी विधि से, होता है साध्य परम फल।।33।।

अतएव त्रिलोक-स्वरूपी, इस नगरी के अधिकारी।
शाश्वत अति श्रेष्ठ प्रभामय, निस्सीम शक्ति के धारी।।
हर पुण्य-पाप से विरहित, जग पुण्यहेतु जगवन्दित।
पर स्वयं अवन्दक प्रभु को, करता प्रणाम हो हर्षित।।34।।

संस्पर्श-हीन अति नीरस, हर गंध रूप से विरहित।
औ शब्द-रहित भी होकर, तद्विषय-ज्ञान से शोभित।।
सर्वज्ञ स्वयं ही होकर, भी अन्य जनों से अविदित।
अस्मार्य जिनेश्वर को ही, मैं ध्याता हूँ हो प्रमुदित।।35।।

गम्भीर सिन्धु से बढ़कर, मन द्वारा भी अनुलंघित।
निष्किञ्चन होने पर ही, धनवानों द्वारा याचित।।
जो सबके पार-स्वरूपी, पर जिनका पार न पाया।
उन अपरम्पार जगत्पति, की शरण-प्राप्ति को आया।।36।।

त्रिभुवन के दीक्षा गुरुवर, है नमन आपको शत्-शत्।
जो वर्धमान भी होकर, स्वयमेव हुये थे उन्नत।।
गिरि मेरु पूर्व में टीला, फिर शिला राशि फिर पर्वत।
फिर हुआ न क्रमशः कुलगिरि, पर था स्वभाव से उन्नत।।37।।

स्वयमेव प्रकाशित जिसके, दिन और रात के सम ही।
बाध्यत्व तथा बाधकता, का नहीं कदापि नियम ही।।
यों जिनके न कभी भी लाघव, है और न गौरव अणुभर।
उन एकरूप अविनाशी, प्रभु को प्रणाम है सादर।।38।।

प्रभुवर ! यों संस्तुति करके, मैं दीनभाव से भरकर।
वर नहीं मांगता, कारण, हैं आप उपेक्षक जिनवर।।
स्वयमेव वृक्ष आश्रित को, मिल जाती छाया शीतल।
छाया की भीख मँगाने से, निकल सकेगा क्या फल।।39।।

यदि देने की अभिलाषा या, आग्रह है 'कुछ लेओ'।
तो मुझे आप में तत्पर, सद्भक्ति भावना देओ।।
विश्वास आप अब वैसी, ही कृपा करेंगे मुझ पर।
निज पोष्यशिष्य पर सकरुण, होता न कौनसा गुरुवर।।40।।

हे देववन्द्य ! जिननायक, जिस किसी भाँति सम्पादित।
यह भति विनम्र पुरुष को, देती पदार्थ मनवांछित।।
फिर भक्ति आपकी संस्तुति, विषयिक अवश्य ही निश्चय।
देती विशेषता-पूर्वक सुख, कीर्ति विभा जय अक्षय ।।41।।

इति विषापहारस्तोत्र समाप्त

कल्याण मन्दिर स्तोत्र भाषा

श्रेय सिन्धु–कल्याण कर, कृत निज–पर–कल्याण।
पार्श्व पंच कल्याण मय, करहु विश्व – कल्याण।।

अनुपम करुणा की सुमूर्ति शुभ, शिव–मंदिर अघनाशक मूल।
भयाकुलित व्याकुल मानव के, अभयप्रदाता अति–अनुकूल।।
बिन कारन भवि जीवन तारन, भव–समुद्र में यान–समान।
ऐसे पाद–पद्म प्रभु पारस, के अर्चूं मैं नित अम्लान।।1।।

जिसकी अनुपम गुण–गरिमा का, अम्बु राशि सा है विस्तार।
यश–सौरभ सु–ज्ञान आदि का, सुरुगुरु भी नहिं पाता पार।।
हठी कमठ–शठ के मद–मर्दन, को जो धूमकेतु–सा सूर।
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी तीर्थपति की भरपूर।। 2।।

अगम–अथाह–सुखद–शुभ–सुंदर, सत्स्वरूप तेरा अखिलेश।
क्यों करि कह सकता है मुझसा, मन्दबुद्धि–मूरख करुणेश।।
सूर्योदय होने पर जिसको, दिखता निजका गात नहीं।
दिवाकीर्ति क्या कथन करेगा, मार्तण्ड का नाथ ! कहीं।।3।।

यद्यपि अनुभव करता है नर, मोहनीय विधि के क्षय से।
तो भी गिन न सकै गुण तव सब, मोहेतर कर्मोदय से।।
प्रलयकाल में जब जलनिधि का, बह जाता है सब पानी।
रत्न–राशि दिखने पर भी क्या, गिन सकता कोई ज्ञानी?।।4।।

तुम अति सुंदर शुद्ध अपरिमित, गुणरत्नों की खानि स्वरूप।
वचननि करि कहने को उमगा, अल्पबुद्धि मैं तेरा रूप।।
यथा मन्दमति लघु शिशु अपने, दोऊ कर को कहै पसार।
जल–निधि को देखहु रे मानव ! है इसका इतना आकार।।5।।

हे प्रभु ! तेरे अनुपम सद्गुण, मुनिजन कहने में असमर्थ।
मुझसा मूरख औ अबोध क्या, कहने को हो सके समर्थ।।
पुनरपि भक्ति–भाव से प्रेरित, प्रभु–स्तुतिको बिना विचार।
करता हूँ, पंछी ज्यों बोलत, निश्चित बोली के अनुसार।।6।।

है अचिन्त्य महिमा स्तुति की, वह तो रहे आपकी दूर।
जबकि बचाता भव–दु:खों से, मात्र आपका 'नाम' जरूर।।
ग्रीष्म कुरित के तीव्र–ताप से, पीड़ित–पंथी हुये अधीर।
पद्म–सरोवर दूर रहे पर, तोषित करता सरस–समीर।।7।।

मन–मंदिर में वास करहिं जब, अश्वसेन वामा–नन्दन।
ढीले पड़ जाते कर्मों के, क्षण भर में दृढ़तर बंधन।।
चंदन के विटपों पर लिपटे, हों काले विकराल भुजंग।
वन–मयूर के आते ही ज्यों, होते उनके शिथलित–अंग।।8।।

बहु विपदाएँ प्रबल वेग से, करें सामना यदि भरपूर।
प्रभु–दर्शन से निमिषमात्र में, हो जाती वे चकनाचूर।।
जैसे गो–पालक दिखते ही, पशु–कुल को तज देते चोर।
भयाकुलित हो करके भागें, सहसा समझ हुआ अब भोर।।9।।

भक्त आपके भव–पयोधि से, तिर जाते तुमको उरधार।
फिर कैसे कहलाते जिनवर, तुम भक्तों की दृढ़ पतवार?।।
वह ऐसे, जैसे तिरती है, चर्म–मसक जलके ऊपर।
भीतर उसमें भरी वायु का, ही केवल यह विभो असर।।10।।

जिसने हरिहरादि देवों का, खोया यश–गौरव–सम्मान।
उस मन्मथ का हे प्रभु ! तुमने, क्षण में मेट दिया अभिमान।।

सच है, जिस जल से पलभर में, दावानल हो जाता शान्त।
क्या न जला देता उस जल को, बडवानल होकर अशान्त।।11।।

छोटी सी मन की कुटिया में, हे प्रभु ! तेरा ज्ञान अपार।
धार उसे-कैसे जा सकते भविजन भव-सागर के पार।।
पर लघुता से वे तिर जाते, दीर्घ-भार से डूबत नाहिं।
प्रभुकी महिमा ही अचिन्त्य है, जिसे न कवि कह सकैं बनाहिं-।।12।।

क्रोध-शत्रु को पूर्व शमनकर, शान्त बनायो मन-आगार।
कर्म-चोर जीते फिर किसविध, हे प्रभु ! अचरज अपरम्पार।।
लेकिन मानव अपनी आँखों, देखहु यह पटतर संसार।
क्या न जला देता वन-उपवन, हिम सा शीतलविकट तुषार।।13।।

शुद्धस्वरूप अमल अविनाशी, परमातमसम ध्यावहिंतोय।
निज-मन-कमल-कोष मधिढूँढ़हिं, सदा साधुतजि मिथ्यामोह।।
अतिपवित्रनिर्मल-सुकांतियुत, कमलकर्णिका बिननहिंऔर।
निपजत कमल बीज उसमें ही, सबजगजानहिं और न ठौर।।14।।

जिस कुधातु से सोना बनता, तीव्र अग्नि का पाकर ताव।
शुद्ध स्वर्ण हो जाता जैसे, छोड़ उपलतापूर्ण विभाव।।
वैसे ही प्रभु के सु-ध्यान से, वह परिणति आ जाती है।
जिसके द्वारा देह-त्याग, परमात्मदशा पा जाती है।।15।।

जिस तनसे भवि चिंतन करते, उस तनको करते क्यों नष्ट।
अथवा ऐसा ही स्वरूप है, है दृष्टान्त एक उत्कृष्ट।।
जैसे बीचवान बन सज्जन, बिना किये ही कुछ आग्रह।
झगड़े की जड़ प्रथम हटाकर, शांत किया करते विग्रह।।16।।

हे जिनेन्द्र तुममें अभेद रख, योगीजन निज को ध्याते।
तब-प्रभाव से तज विभाव वे, तेरे ही सम हो जाते।।

केवल जल को दृढ़श्रद्धा से, मानत है जो सुधा-समान।
क्या न हटाता विष-विकार वह, निश्चय से करने पर पान।।17।।

हे मिथ्यातम अज्ञान रहित, सुज्ञानमूर्ति ! हे परम यती।
हरिहरादि ही मान अर्चना, करते तेरी मन्दमती।।
है यह निश्चय प्यारे मित्रों, जिनके होत पीलिया रोग।
श्वेत शंखको विविध-वर्ण, विपरीत रूप देखें वे लोग।।18।।

धर्म-देशना के सुकाल में, जो समीपता पा जाता।
मानव की क्या बात कहूँ, तरु तक अशोक है हो जाता।।
जीववृन्द नहिं केवल जाग्रत, रवि के प्रकटित ही होते।
तरु तक सजग होत अति हर्षित, निद्रा तज आलस खोते।।19।।

है विचित्रता सुर बरसाते, सभी ओर से सघन सुमन।
नीचे डंठल ऊपर पंखुरी, क्यों होते हैं हे ! भगवन्।।
है निश्चित सुजनों सुमनों के, नीचे को होते बंधन।
तेरी समीपता की महिमा है, हे ! वामादेवी-नंदन।।20।।

अति गम्भीर हृदय-सागर से, उपजत प्रभु के दिव्य वचन।
अमृततुल्य मानकर मानव, करते उनका अभिनन्दन।।
पी-पीकर जग-जीव वस्तुतः, पा लेते आनन्द अपार।
अजर-अमर हो फिर वे जगकी, हर लेते पीड़ा का भार।।21।।

ढुरते चारु चँवर अमरों से, नीचे से ऊपर जाते।
भव्य जनों को विविधरूप से, विनय सफल वे दर्शाते।।
शुद्धभाव से नत-शिर हो जो, तव पदाब्ज में झुक जाते।
परमशुद्ध हो ऊर्ध्वगती को, निश्चय करि भविजन पाते।।22।।

उज्ज्वल हेम सुरत्न पीठ पर, श्याम सुनत शोभित अनुरूप।
अतिगम्भीर सुनि:सृत वाणी, बतलाती है सत्य स्वरूप।।
ज्यों सुमेरु पर ऊँचे स्वर से, गरज गरज घन बरसैं घोर।
उसे देखने सुनने को जन, उत्सुक होते जैसे मोर।।23।।

तुम तन-भा-मण्डलसे होते, सुरतरु के पल्लव छविछीन।
प्रभुप्रभाव को प्रकट दिखाते, हो जड़रूप चेतनाहीन।।
जब जिनवर की समीपतातैं, सुरतरु हो जाता गतराग।
तब न मनुज क्यों होवेगा जप, वीतराग खो करके राग।।24।।

नभ-मण्डल में गूँज गूँजकर, सुर दुन्दुभिकर रही निनाद।
रे रे प्राणी आतमहित नित, भजले प्रभुको तज परमाद।।
मुक्तिधाम पहुँचाने में जो, सार्थवाह बन तेरा साथ।
देंगे त्रिभुवनपति परमेश्वर, विघ्न-विनाशक पारसनाथ।।25।।

अखिल-विश्व में हे प्रभु ! तुमने, फैलाया है विमल-प्रकाश।
अत: छोड़कर स्वाधिकार को, ज्योतिर्गण आया तव पास।।
मणि-मुक्ताओं की झालर युत, आतपत्र का मिष लेकर।
त्रिविध-रूपधर प्रभुको सेवें, निशिपति तारान्वित होकर।।26।।

हेम-रजत-मानक से निर्मित, कोट तीन अति शोभित से।
तीन लोक एकत्रित होके, किये प्रभु को वेष्टित से।।
अथवा कान्ति-प्रताप-सुयश के, संचित हुए सुकृत के ढेर।
मानों चारों दिशि से आके, लिया इन्होंने प्रभु को घेर।।27।।

झुके हुये इन्द्रों के मुकुटों, को तज कर सुमनों के हार।
रह जाते जिन चरणों में ही, मानो समझ श्रेष्ठ आधार।।

प्रभु का छोड़ समागम सुन्दर, सु-मनस कहीं न जाते हैं।
तब प्रभाव से वे त्रिभुवनपति, भव-समुद्र तिर जाते हैं।।28।।

भव-सागर से तुम परान्मुख, भक्तों को तारो कैसे?।
यदि तारो तो कर्म-पाक के, रस से शून्य अहो कैसे?।।
अधोमुखी परिपक्व कलश ज्यों, स्वयं पीठ पर रख करके।
ले जाता है पार सिन्धु के, तिरकर और तिरा करके।।29।।

जगनायक-जगपालक होकर, तुम कहलाते दुर्गत क्यों?।
यद्यपि अक्षरमय स्वभाव है, तो फिर अलिखित अक्षर क्यों?।।
ज्ञान झलकता सदा आप में, फिर क्यों कहलाते अनजान?।
स्व-पर प्रकाशक अज्ञजनों को, हे प्रभु ! तुम ही सूर्य-समान।।30।।

पूरव बैर विचार क्रोध करि, कमठ धूलि बहु बरसाई।
कर न सका प्रभु तव तन मैला, हुआ मलिन खुद दुखदाई।।
कर करिके उपसर्ग घनेरे, थककर फिर वह हार गया।
कर्मबन्ध कर दुष्ट प्रपंची, मुँह की खाकर भाग गया।।31।।

उमड़ घुमड़ कर गर्जत बहुविध, तड़कत बिजली भयकारी।
बरसा अति घनघोर दैत्य ने, प्रभु के सिर पर कर डारी।।
प्रभु का कछु न बिगाड़ सकी वह, मूसल सी मोटी धारा।
स्वयं कमठ ने हठधर्मी वश, निग्रह अपना कर डारा।।32।।

कालरूप विकराल वृक्ष विच, मृत-मुंडन की धरि माला।
अधिक भयावह जिनके मुख से, निकल रही अग्नि ज्वाला।।
अगणित प्रेत पिशाच असुर ने, तुम पर स्वामिन भेज दिये।
भव-भव के दु:ख हेतु क्रूर ने, कर्म अनेकों बांध लिये।।33।।

पुलकित वदन-सु-मन हर्षित हो, जो जन तम माया जंजाल।
त्रिभुवनपतिके चरण-कमल की, सेवा करते तीनों काल।।

तुम प्रसादतैं भविजन सारे, लग जाते भव-सागर-पार।
मानव जीवन सफल बनाते, धन्य धन्य उनका अवतार।।34।।

इस असीम भव-सागर में नित, भ्रमत अकथ जो दु:ख पायो।
तोॐ सु-यश तुम्हारो साँचो, नहिं कानों तक सुन पायो।।
प्रभु का नाम-मन्त्र यदि सुनता, चित्त लगा करके भरपूर।
तो यह विपदारूपी नागिन, पास न आती रहती दूर।।35।।

पूरव भव में तव चरनन की, मनवांछित फल की दातार।
कभी न की सेवा भावों से, मुझको हुआ आज निरधार।।
अत: रंक जन मेरा करते, हास्यसहित अपमान अपार।
सेवक अपना मुझे बनालो, अब तो हे ! प्रभु जगदाधार।।36।।

दृढ़निश्चय करि मोहतिमिर से, मूँदे मूँदे थे लोचन।
देख सका ना उनसे तुमको, एकबार हे दुखमोचन।।
दर्शन कर लेता गर पहिले, तो जिसकी गति प्रबल अरोक।
मर्मच्छेदी महा अनर्थक, पाता कभी न दु:ख के थोक।।37।।

देखा भी है, पूजा भी है, नाम आपका श्रवण किया।
भक्तिभाव अरु श्रद्धापूर्वक, किन्तु न तेरा ध्यान किया।।
इसीलिये तो दु:खों का मैं, गेह बनता हूँ निश्चित ही।
फले न किरिया बिना भावके, लोकोत्तौ सुप्रचलित ही।।38।।

दीन-दु:खी जीवों के रक्षक, हे ! करुणासागर प्रभुवर।
शरणागत के हे ! प्रतिपालक, हे ! पुण्योत्पादक जिनवर।।
हे जिनेश ! मैं भक्तिभाव वश, शिर धरता तुमरे पग पर।
दु:खमूल निर्मूल करो प्रभु, करुणा करके अब मुझ पर।।39।।

हे शरणागत के प्रतिपालक, अशरण जनको एक शरण।
कर्म-विजेता त्रिभुवननेता, चारु चन्द्रसम विमल चरण।।
तव पद-पङ्कज पा करके ऐ, प्रतिभाशाली बड़भागी।
कर न सका यदि ध्यान आपका, हूँ अवश्य तब हतभागी।।40।।

अखिल वस्तु के जान जान लिये हैं, सर्वोत्तम जिसने सब सार।
हे जगतारक ! हे जगनायक ! दुखियों के हे करुणागार।।
वन्दनीय हे दया-सरोवर, दीन-दुखी की हरना त्रास।
महा-भयङ्कर भव-सागर से, रक्षा कर अब दो सुखवास।।41।।

एकमात्र है शरण आपकी, ऐसा मैं हूँ दीन-दयाल !
पाऊँ फल यदि किञ्चित करके, चरणों की सेवा चिर-काल।।
तो हे तारन-तरन नाथ हे, अशरण-शरण मोक्षगामी।
बनें रहें इस- परभव में, बस मेरे आप सदा स्वामी।।42।।

हे जिनेन्द्र ! जो एकनिष्ठ तब, निरखत इकटक कमल-वंदन।
भक्तिसहित सेवा से पुलकित, रोमाञ्चित है जिनका तन।।
अथवा रोमावलि के ही जो, पहिने हैं कमनीय वसन।
यों विधि-पूर्वक स्वामिन् तेरा, करते हैं जो अभिनन्दन।।43।।

जन दृगरूपी 'कुमुद' वर्ग के, विकसावन हारे राकेश।
भोग-भोग स्वर्गों के वैभव, अष्टकर्म-मल कर नि:शेष।।
स्वल्पकाल में मुक्तिधाम की, पाते हैं वे दशा-विशेष।
जहाँ सौख्य-साम्राज्य अमर है, आकुलता का नहीं प्रवेश।।44।।

।। इति भाषाकल्याण मन्दिर स्तोत्र समाप्त ।।

एक सौ आठ (108) नाम माला

ॐ कार तूही निरधार तूही, निस्तार तूही विस्तार तूही।
निरहार तूही, अनहार तूही, अविहार तूही अविकार तूही।।
निरमार तूही भवपार तूही, जगसार तूही जगतार तूही।
श्रृङ्गार तूही भंडार तूही, उपकार तूही दातार तूही।।
भगवान तूही सुखखान तूही, अमलान तूही कल्यान तूही।
महाज्ञान तूही महाध्यान तूही, महादान तूही महाजान तूही।।
परधान तूही निरवान तूही, शिवनाथ तूही द्युतिभान तूही।
चिरपाल तूही गुनमाल तूही, जितकाल तूही शुभभाल तूही।।
बिनभाल तूही बिनजाल तूही, प्रतिपाल तूही अनधलाल तूही।
जिनराज तूही जहकाज तूही, गुणज्ञान तूही सुखसाज तूही।।
अरहंत तूही भगवंत तूही, शिवकंत तूही सु अनन्त तूही।
दुख-हरण तूही सुखकरण तूही, भव शरण तूही हरमरण तूही।।
परमेश तूही अनिमेष तूही, सुख वीर्य तूही धरधीर्य तूही।
निर्लेष तूही स्वालेष तूही, लोकेश तूही अनिमेष तूही।।
महावीर तूही महाधीर तूही, अशरीर तूही गंभीर तूही।
भगवंत तूही जयवंत तूही, परमज्ञ तूही अति तग्य तूही।।
महादेव तूही सुरदेव तूही, लखभेव तूही स्वयमेव तूही।
निरधार तूही आधार तूही, बिनवाद तूही महासाध तूही।।
निरकोह तूही निरलोह तूही, निर्दोष तूही निर्मोह तूही।
निविरोध तूही, परमौध तूही, बहुशुद्ध तूही विधिरोध तूही।।

गुणकोष तूही सुख पोष तूही, अकलंक तूही निकलंक तूही।
अघ सोख तूही सुख-कोष तूही, निर्नेह तूही निर्देह तूही।।
निरगेह तूही सुख-मेह तूही, मांगल्य तूही बिनशल्य तूही।
अवमल्ल तूही जिन मल्ल तूही, बिनरूप तूही विधिरूप तूही।।
गुणकूप तूही शिवभूप तूही, अविषोद तूही स्व अनादि तूही।
निर्वाद तूही स्याद्वाद तूही, बिनकर्म तूही बिन भर्म तूही।।
मनूत्तम तूही शिव नर्म तूही, सर्वज्ञ तूही धर्मज्ञ तूही।।

अठोत्तर सो गुनन की, माला जपो त्रिकाल।
प्रभु तुम दीनदयाल हो, 'द्यानत' करो निहाल।।

।। इति ।।

गोम्मटेस-थुदि (प्राकृत)

विसट्ट कंदोट्ट दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।1।।

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गण्डं, आबाहु-दोलंत-सुकण्णपासं।
गइन्द-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।2।।

सुकण्ठ सोहा-जिय दिव्व-संखं, हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं।
सुपेक्खणिज्जायल-सुट्ठु-मज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।3।।

विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणिं सव्व-सुचेंदियाणं।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।4।।

लया-समक्कंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।5।।

दियंबरो जो ण च भीइ-जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतु-प्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।6।।

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिटठी, सोक्खे ण वाञ्छा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।7।।

उपाहि-मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं भय मोह-हारय।
वस्सेय-पज्जंत-मुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।8।।

(इति गोम्मटेस स्तुति)

गोमटेश स्तुति

- आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

चन्द्र समान सुमुख अति सुंदर, लोचन नील कमल दल रूप।
चंपक पुष्प पराजित होता, देख नाशिका का स्वरूप।।
कामदेव पद से शोभित हैं, बाहुबली है जिनका नाम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।1।।

जिनके स्वच्छ सुनिर्मल जल सम, शोभित सुन्दर उभय कपोल।
कर्ण कंध पर्यंत झूलते, बालों की संरचना गोल।।
गज सुण्डासम उभय भुजाएँ, गगन रूप शोभित अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।2।।

दिव्य शंख की शोभा को भी, जीत रहा है सुंदर कंठ।
विशद हिमालय की भांति है, वक्षस्थल जिनका उत्कंठ।।
अचल सुसुंदर कटि प्रदेश है, सुदृढ़ प्रेक्षणीय अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।3।।

विंध्यगिरि के अग्र भाग पर, शुभम् कांति से दमक रहे।
सब चैत्यों के शिखामणि हो, पूर्ण चाँद सम चमक रहे।।
तीन लोकवर्ती जीवों को, सुख देते अनुपम अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।4।।

लिपटी महत् लताएँ जिनके, महत् देह पर चारों ओर।
कल्पवृक्ष सम भवि जीवों को, कर देते हैं भाव विभोर।।
देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित, चरण कमल जिनके अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।5।।

पूर्ण दिगंबर निर्भय साधक, जो हैं निज आतम के भक्त।
मन विशुद्ध जिनका वस्त्रों में, होता नहीं, कभी आसक्त।।
सर्पादि की फुंकारों से, कंपित न होते अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।6।।

स्वच्छ दृष्टि शुभ बुद्धि वाले, दोष मूल है मोह विहीन।
नाश किया उस महाबली को, सुख की आशा से भी हीन।।
किया पराजित भ्रात भरत को, शल्य रहित शोभित अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।7।।

सर्व परिग्रह रहित आप हैं, धन अरु धाम के त्यागी देव।
मद अरु मोह जीतने वाले, क्षायिक समदृष्टि हैं एव।।
एक वर्ष पर्यंत अखंडित, 'विशद' किया अनशन अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम।।8।।

***

आचार्य वंदना

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

श्री सिद्ध भक्ति

पौर्वाह्निक आचार्य (भक्ति) वंदना, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
सकल कर्म के क्षय हेतु हम, करते हैं गुरु बारंबार।।
भाव पुष्प से पूजा वंदन, स्तव सहित समर्पित अर्घ्य।
श्री सिद्धो की भक्ति संबंधी, करते हैं हम कायोत्सर्ग।।

(9 बार णमोकार मंत्र पढ़े)

सिद्धों के हैं आठ मूलगुण, दर्श अनन्त वीर्य सुख ज्ञान।
अवगाहन सूक्ष्मत्व अगुरुलघु, अव्याबाध अनन्त प्रमाण।।
तप से नय संयम चरित्र से, सिद्ध हुए हैं दर्शन ज्ञान।
ऐसे सिद्ध प्रभु के चरणों, करते बारम्बार प्रणाम।।

अञ्चलिका

सिद्ध भक्ति के कायोत्सर्ग में, हुई हो कोई हम से भूल।
हे भगवन् ! हम इच्छा करते, वह गल्ती होवे निर्मूल।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित मय, अष्ट कर्म से पूर्ण विमुक्त।
उर्ध्व लोक के शीर्ष विराजित, अष्ट गुणों से हैं संयुक्त।।

वर्तमान अरु भूत भविष्यत, तीन काल के जगत् प्रसिद्ध।
तप से नय संयम चारित्र से, जो भी जीव हुए हैं सिद्ध ।

नित्य अर्चना पूजा वंदन, नमन् करें हो सुगति गमन।।
बोधि समाधी जिन गुण पाएँ, कर्म कष्ट का होय शमन।।

श्रुत भक्ति

पौर्वाह्निक आचार्य (भक्ति) वंदना, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
सकल कर्म के क्षय हेतु हम, करते हैं गुरु बारम्बार।।
भाव पुष्प से पूजा वन्दन, स्तव सहित समर्पित अर्घ्य।
श्री जिनश्रुत भक्ति सम्बंधी, करते हैं हम कायोत्सर्ग।।1।।

(9 बार णमोकार मंत्र पढ़े)

एक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख सहस हैं अट्ठावन।
पाँच पदों से सहित सुश्रुत को, मेरा है शत्-शत् वन्दन।।
अर्हत् कथित सु गणधर गूथित, महा समुद्र रूप श्रुतज्ञान।
भक्ति सहित हम शीष झुकाकर, करते बारम्बार प्रणाम।।1।।

अञ्चलिका

हे ! भगवन् हम इच्छा करते, पावन श्री श्रुत भक्ति का।
कायोत्सर्ग किया जो हमने, सर्वदोष से मुक्ति का।।
अंगोपांग प्रकीर्णक प्राभृत, प्रथमानुयोग तथा परिकर्म।
सहित पूर्वगत और चूलिका, स्तुति सूत्र कथा जिनधर्म।।2।।

नित्य अर्चना पूजा करते, करते वन्दन सहित नमन।
सर्व कर्म का क्षय हो जावे, दुःखों का हो पूर्ण समन।।
बोधी का हो लाभ मुझे अरु, विशद सुगति में करूँ गमन।
जिन गुण की सम्पती पाएँ, और समाधि सहित मरण।।3।।

आचार्य भक्ति

पौर्वाह्निक आचार्य वंदना, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
सकल कर्म के क्षय हेतु हम, करते हैं गुरु बारंबार।।
भाव पुष्प से पूजा वन्दन स्तव सहित समर्पित अर्घ्य।
श्री आचार्य भक्ति संबंधी, करते हैं हम कायोत्सर्ग।।

(9 बार णमोकार मंत्र पढ़े)

जो श्रुत सागर में पारंगत, स्व पर मत में बुद्धि निपुण ।
सम्यक् तप चारित्र की निधि हैं गुरु गुण गण को विशद नमन्।।
छत्तिस मूल गुणों के धारी, पालन करते पञ्चाचार।
शिष्यों का जो करें अनुग्रह, वन्दनीय हैं धर्माचार्य।।1।

गुरु भक्ति संयम से तिरते, भव सागर है बड़ा महान।
अष्ट कर्म का छेदन करते, जन्म मरण की करते हान।।
ध्यान रूप अग्नि में प्रतिदिन, व्रत अरु मंत्र होम में लीन।
षट् आवश्यक पालन करने, में रहते हरदम लवलीन।।2।।

तप रूपी धन जिनका धन है, शील व्रतों के ओढ़े वस्त्र।
लाख चौरासी गुण के हरदम, साथ में अपने रखते शस्त्र।।
साधु क्रिया का पालन करते, सूर्य चन्द्र से तेज महान।
मोक्ष महल के द्वार खोलने, हेतु योद्धा संत प्रधान।।3।।

ऐसे सद् साधुजन मुझ पर, हो प्रसन्न दें करुणादान
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण के, सागर हे गुरुवर ! गुणवान।।
मोक्ष मार्ग के उपदेशक गुरु, सारे जग में चरण शरण।
रक्षा करो हमारी गुरुवर, चरण कमल में विशद नमन्।।4।।

अञ्चलिका

हे ! भगवन् हम इच्छा करते, जैनाचार्य की भक्ति का।
कायोत्सर्ग किया जो हमने, सर्व दोष से मुक्ति का।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण अरु, पञ्चाचार के शुभ साधक।
श्री आचार्य अरु उपाध्याय जी, द्वादशांग के आराधक।।5।।

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण जो, रत्नात्रय को पाल रहे।
सर्व साधु जी शुद्ध भाव से, चेतन तत्व सम्भाल रहे।।
कर्म दुःख क्षय करूँ समाधि, बोधि सुगति में जाने को।
नित्य वन्दना पूजा अर्चा, करते जिन गुण पाने को।।6।।

***

दोषों की आलोचना

हे प्रभो ! हे जिनेन्द्र देव ! हे देवाधि देव ! हे वीतराग हितोपदेशी ! हे परम पिता परमात्मा ! मेरे द्वारा मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से किसी जीव की हिंसा हो गई हो, मेरे द्वारा झूठ बोला गया हो, किसी की चोरी की हो, मेरे मन में कुशील का भाव आया हो, परिग्रह संग्रह की इच्छा की हो मेरा यह दुष्कृत मिथ्या हो।

हे प्रभो ! हे सर्वज्ञ हितोपदेशी भगवान ! मुझसे क्रोध हो गया हो, मान हो गया हो, मैंने मायाचारी की हो, मैंने शुभ कार्य में लोभ किया हो, मेरे द्वारा कोई व्यसन हो गया हो, अष्ट मूलगुणों के पालन में दोष लगे हों, आवश्यक कर्त्तव्य में प्रमाद किया हो, मेरा यह दुष्कृत मिथ्या हो।

हे त्रिलोकीनाथ ! हे परमेश्वर ! हे अरिहन्त देव ! हे भगवान ! मेरे हृदय में प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव हो गुणी जनों में प्रमोद भाव हो, दुःखी जीवों के प्रति करुणा भाव हो, विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव रहे।

हे परमात्मा ! मेरे दु:खों का क्षय हो, कर्मों का नाश हो, बोधि की प्राप्ति हो, समाधि सहित मरण हो, जिन गुण सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

हे प्रभु ! जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरण कमल मेरे हृदय में विद्यमान रहें मेरा हृदय आपके 'विशद' चरणों में सदा लीन रहे।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में विराजमान अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, नव देवताओं के लिए मेरा मन वचन और काय से शत्-शत् नमोस्तु ! नमोस्तु ! नमोस्तु !

(कोयोत्सर्ग करना)

पञ्च महागुरु भक्ति (प्राकृत)

मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया,
पंचकल्लाण-सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।।1।।

जेहिं झाणग्गि-बाणेहिं अइ-दड्ढयं,
जन्म-जर-मरण-णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं।।2।।

पंच-आचार पंचग्गि संसाहया,
बारसंगाइ-सुअ-सलहि-अवगाहया।
मोक्ख-लच्छी महंती महंते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं-गया-संगया।।3।।

घोर संसार-भीमाडवी-काणणे,
तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पहदेसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।4।।

उग्ग-तव-चरण-करणेहिं झीणं गया,
धम्म वर-झाण-सुक्केक्क-झाणं-गया।
णिब्भरं तव-सिरी-ए-समा-लिंगया,
साहवो ते महा-मोक्ख-पथ-मग्गया।।5।।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए,
गुरुय-संसार-घण-वेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्ध-सोक्खाइ बहु-माणणं,
कुणइ कम्मिंधणं पुंज-पज्जालणं।।6।।

अरुहा-सिद्धाइरिया-उवझाया-साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण-णमोयारा भवे भवे मम सुहं दिंतु।।7।।

अञ्चलिका

इच्छामि भन्ते ! पंचमहागुरु-भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं। अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं; अट्ठ-गुण संपण्णाणं उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-मउ-संजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रदाणं सव्वसाहूणं, णिच्च कालं, अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं **जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं।**

(इति पञ्च महागुरु भक्ति)

पंच महागुरु भक्ति

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

(तर्ज – नित देव मेरी आत्मा...)

कल्याण पाए पाँच अरु, सिर छत्र शोभित तीन हैं।
सुज्ञान–दर्शन ध्यान बल, अनंत सुख में लीन हैं।।
नागेन्द्र सुर नर इन्द्र आदि, पूजते जिनके चरण।
वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्–शत् नमन।।1।।

ध्यानाग्नि के द्वारा स्वयं ही, कर्म सारे दग्ध कर।
जन्म, मृत्यु अरु जरा का, नगर अति विध्वस्तकर।।
शाश्वत् सुशिव स्थान को भी, कर रहे हैं जो वरण।
वे सिद्ध जिन मंगल जगत् में, है चरण शत्–शत् नमन।।2।।

पालें सुपंचाचार पंच, प्रकार पाप विनाशते।
द्वादश सुअंग समुद्र में, नित सतत् जो अवगाहते।
जो महत् मुक्ति लक्ष्मी के, हेतु करते आचरण।
आचार्य मंगल हैं जगत में, है चरण शत्–शत् नमन।।3।।

संसार रूपी अति भयानक, घोर वन अति सघन है।
नख तीक्ष्ण अरु विकराल बाले, पंच अघ का भ्रमण है।
जो नष्ट करके पाप पथ को, मोक्ष पथ करते वरण।
उवज्झाय पाठक गुरु को मम्, है चरण शत्–शत् नमन।।4।।

तपश्चरण कर उग्रतम अति, काय जिनकी क्षीण है।
शुभधर्म ध्यान अरु शुक्ल ध्यान, में सदा लवलीन हैं।
स्व रूप है अर्हंत जैसा, श्रेष्ठ जग में आचरण।
मोक्ष पथगामी सुसाधु, है चरण शत्–शत् नमन।।5।।

पंच गुरु स्तुत्य हैं अरु, लोक में वंदित कहे।
संसार रूपी सघन बेली, छेदने में रत रहे।
दुष्कर्म ईंधन हीन करने, में 'विशद' जो लीन हैं।
श्री सिद्ध सुख को प्राप्त करने, में बहुत प्रवीण हैं।। 6।।

अर्हंत सिद्धाचार पाठक, साधु मंगलमय महाँ।
ये पंच गुरु मंगल करें मम्, मैं रहूँ चाहे जहाँ।।7।।

अञ्चलिका

हे भगवन ! मैं इच्छा करता, पञ्च महागुरु भक्ति का।
कायोत्सर्ग किया है मैंने, सर्व दोष से मुक्ति का।।
प्रातिहार्य वसु गुण युत अर्हत्, ऊर्ध्वलोक में स्थित सिद्ध।
प्रवचन माता अष्ट सहित हैं, परम पूज्य आचार्य प्रसिद्ध।।1।।

आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपदेशक उपाध्याय महान।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, रहते सर्व साधु गुणवान।।
कर्म दुःख क्षय करूँ समाधि, बोधि सुगति में जाने को।
नित्य वंदना पूजा अर्चा, करते जिन गुण पाने को।।2।।

***

गणधर वलय स्त्रोत

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

कर्म घातिया अरि को जीता, जो हैं सर्व गुणों में ज्येष्ठ।
देश सर्व परमावधि धारक, कोष्ठ बीज बुद्धि अति श्रेष्ठ।।
पादानुसारिणी बुद्धि आदि, धारक गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।1 ।।

संभिन्न श्रोतृत्व धारी जिन हे ! प्रत्येक बुद्ध अरु बोधित बुद्ध।
मोक्षमार्ग रूपी सु धर्ममय आप स्वयं में स्वयं प्रबुद्ध।।
सच्चे मुनियों के स्वामी हैं ऐसे गणधर देव महान्।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।2 ।।

द्वय प्रकार मनपर्यय ज्ञानी, ऋजु विपुलमति पाया ज्ञान।
दश पूरब धारी मुनिवर हैं, चौदह पूर्व धारी गुणवान।।
अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता, शास्त्र कुशल गणधर भगवान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।3 ।।

महा प्रभाव विक्रिया ऋद्धि, धारी विद्या धारक नाथ।
चारण ऋद्धि प्राप्त किए हैं प्रज्ञावान आप हैं साथ।।
नित्य गगन में गमन करें जो, ऐसे गणधर देव महान्।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।4 ।।

आशी विष दृष्टी विष ऋद्धी, के धारक मुनिराज प्रधान,
अति उग्र तप दीप्त तपोतप, तप्त ऋद्धी धारक गुणवान।
महा घोर तप ऋद्धि धारक, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।5 ।।

देवों द्वारा वंदनीय हैं लोक पूज्य सदगुण धारी,
जगत् पूज्य ज्ञानी जीवों के, सद्गुण धारक ब्रह्मचारी।
घोर पराक्रम धारण करते, ऐसे गणधर देव महान,
उनके गुण की प्राप्ति हेतु चरणों करते 'विशद' प्रणाम।।6।।

आमर्द्धि अरु खेलार्द्धि युत, प्रजल्ल तथा विड ऋद्धीवान्।
पीड़ा आदि हरने वाले, सर्व ऋद्धि हैं जिन्हें प्रधान।।
मन बल वचन काय ऋद्धि युत, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।7।।

सत्क्षीर स्रावी धृतस्रावी युत, मधुर स्रावी ऋद्धिधारी।
अमृत स्रावी अक्षीण महानस, वर्धमान ऋद्धिधारी।।
तीन लोक में पूज्य मुनीश्वर, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।8 ।।

सिद्धालय में आप विराजित, महत् श्री जिनवर अतिवीर।
वर्धमान ऋद्धि विशिष्ट युत, बुद्धि ऋद्धिधारी गुण धीर।।
मुक्ती वर ऋषि मुनी इन्द्र अरु, श्री गणनायक देव महान्।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।9 ।।

नर सुर विद्याधर से पूजित, श्रेष्ठ बुद्धि भूषित गुणखान।
विविध गुणों के सागर हैं जो, गज मन्मथ को सिंह समान।।
भव सागर को पोत रूप हैं, मुनि समूह के इन्द्र महान।।
सिद्धि दो हमको हे भगवन !, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।10 ।।

गणधर वलय को शुद्ध मन से, नित्य पढ़ता भाव से।
पाप का वह नाश करता, पुण्य पावे चाव से।।
भूत विष आदि कुव्याधि, के उपद्रव नाश हों।
शुभ अशुभ सब स्वप्न दिखते, अंतिम समाधिवास हो।।11 ।।

दर्शन-स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुःख पाये जिन गुण हाने।।
पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर।।
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पानकर।।1।।

तुम पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।
रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तब भक्ति में जाऊँ रंगा।।
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगैं।
श्रुत शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै।।2।।

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारुँ वन जाकर।।
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करुँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करुँ।।
तप तपूं द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ।।3।।

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ।।
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ।।

आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ।।4।।

***

दर्शन स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन।।
जय वीतराग विज्ञान पूर, जय मोहतिमिर को हरनसूर।
जय ज्ञान अनन्तानन्तधार, दृग सुख वीरज मंडित अपार।।
जय परम शांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वश जोगे वशाय, तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय।।
तुम गुण चिंतत निज पर विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषण वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त।।
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणति मय अछीण।।
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, सुचतुष्टयमय राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महन्त, नव केवल लब्धिरमा धरंत।।
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जांहि जै हैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को ओर न आप टारि।।
यह लखि निज दुख गद हरण काज, तुमही निमित्त कारण इलाज।
जानें तातैं मैं शरण आय, उचरो निज दुख जो चिर लहाय।।

मैं भ्रम्यो अपन को विसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग-मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परणति में, आपो चितार, कबहुँ न अनुभवो स्वपद सार।।
तुमको बिन जाने जो क्लेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मझार भव धर-धर मर्‌यो अनन्तबार।।
अब काल लब्धि बल तैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशहाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द, चाख्यो स्वातमरससुख निकन्द।।
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरे न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुण गण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव।।
आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परणति न जाय।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मन मोहताप।।
शशि शांति करन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभव तैं भव नशाय।।
त्रिभुवन तिहुँ काल मंझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जिहाज।।

दोहा

तुम गुण गण मणि गणपति गणत न पावहिं पार।
''दौल'' स्वल्पमति किम कहैं, नमु त्रियोग सम्हार।।

***

देव स्तुति

प्रभु पतित-पावन - मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरण जी।।

तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी।।

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान-धन मेरो हर्‌यो।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो।।

धन घड़ी यों धन दिवस, यों धन्य जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो।।

छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरै।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत कोटि रवि छवि को हरै।।

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हर्ष ऐसो भयो, मनु रङ्क चिन्तामणि लयो।।

मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारण तरण जी।।

जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नर-राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाँचहूँ तुम भक्ति भव भव, दीजिये शिव नाथ जी।।

***

आराधना पाठ

(स्नान करते समय बोलना चाहिए)

मैं देव नित अरहंत चाहूं, सिद्ध का सुमरन करौं।
मैं सू गुरुमुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामय जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूं, जासु में परपंचना।।1।।

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसै।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसै।।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चंपापुर पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजै भ्रमजुरी।।2।।

नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्व न मन धरौं।
षट्द्रव्य गुन परजाय चाहूँ, ठीक जासों भय हरौं।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव न चहूँ कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहीं लागै कदा।।3।।

सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूं भावसों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हरख उछावसों।।
सोलह जु कारन दुख निवारण, सदा चाहूं प्रीतिसों।
मैं चित अठाई पर्व चाहूं, महा मंगल रीति सों।।4।।

अनुयोग चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाहसों।
पाये धरम के चार ये, चाहूं अधिक उछावसों।।
मैं दान चारों सदा चाहूं, भुवन-वशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं जारि चाहूँ, अन्त में यह ही गहूं।।5।।

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं।।
प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छूटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना।।6।।

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिन ही सो करों।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, और आरंभ परिहरौं।।
इस दुक्ख पंचम काल माहीं, सुकुल श्रावक मैं लह्यो।
अरु महाव्रत धरि सको नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो।।7।।

आराधना उत्तम सदा, चाहूँ सुनो जिनरायजी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत', दया करना न्यायजी।।
वसु कर्म नाश विकास, ज्ञानप्रकाश मोको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधि मरन, सुभक्ति चरनन् दीजिये।।8।।

***

प्रातःकालीन स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आश।
ज्ञान-भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनाश।।1।।

जीवों की हम करुणा पालें, झूँठ वचन नहिं कहैं कदा।
पर धन कबहुँ न हरिहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रहे सदा।।2।।

तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष-सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, उसकी सेवा किया करें।।3।।

दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें विचार।।4।।

सुख-दुख से हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय मार्ग का लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतम बल।।5।।

अष्ट कर्म जो दुख देते हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, रोग शोक सब ही टर जाय।।6।।

आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा।।7।।

हाथ जोड़ कर शीश नमावें, तुमको भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आश हमारी, चरण शरण में आन पड़े।।8।।

***

सायंकालीन स्तुति

हे सर्वज्ञ वीर जिनदेवा, चरण शरण हम आते हैं।
जान अनंतगुणाकर तुमको, चरणन शीष नवाते हैं।।1।।

कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं विरोध नहीं पाता।
अनुभव बोध अधिक जिनके हैं, उन पुरुषों के मन भाता।।2।।

दर्शन ज्ञान चरित्रस्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया।
यही मार्ग हितकारी सबका, पूर्वऋषीगण ने गाया।।3।।

रत्नत्रय को भूल न जावै, इसीलिए उपनयन करैं।
ब्रह्मचर्य को दृढ़तम पालै, सप्त व्यसन का त्याग करै।।4।।

नीतिमार्ग पर नित्य चलै हम, योग्याहार विहार करै।
पालै योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करै।।5।।

धर्म मार्ग अरु वैधमार्ग से, देशोद्धार विचार करै।
आर्षवचन हम दृढ़तम पालै, सत्सिद्धान्त प्रचार करै।।6।।

श्री जिनधर्म बढ़े दिन दूनों, पंच आप्तनुति नित्य करैं।
सत्संगित को पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरैं।।7।।

फलें भाव ये सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं।
'लाल' बाल मिल भाल वीरके, चरणों में शिश धरते हैं।।8।।

***

आध्यात्मिक शयन गीतिका

- आचार्य श्री शुभचन्द्र

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसारमाया-परिवर्जितोऽसि।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र ! ।। 1।।

ज्ञातासि दृष्टासि परात्मरूपोऽखण्डस्वरूपोऽसि गुणालयोऽसि।
जितेन्द्रियस्त्वं त्यज मानमुद्रां, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र।। 2।।

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीनः, सिद्धस्वरूपोऽसि कलङ्कमुक्तः।
ज्योतिः स्वरूपोऽसि विमुञ्च मायां, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र !।।3।।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि, चिद्रूपभावोऽसि चिरन्तनोऽसि।
अलक्ष्यभावो जहि देहमोहं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र !।। 4।।

निष्कामधामासि विकर्मरूपो, रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रः।
वेत्तासि चेतासि विमुञ्च कामं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र ! ।। 5।।

प्रमादमुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि, अनन्तबोधादिचतुष्टयोऽसि।
ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरूपं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र !।। 6।।

कैवल्यभावोऽसि निवृत्तयोगो, निरामयो ज्ञातसमस्ततत्त्वः।
परात्मवृत्तिः स्मर चित्स्वरूपं, मन्दालसावाक्यमुपासि पुत्र !।।7।।

चैतन्यरूपोऽसि विमुक्तमारो, भावादिकर्मासि समग्रवेदी,
ध्याय प्रकामं परमात्श्री सिद्ध भक्तिसावाक्यमुपासि पुत्र !।।8।।

***

आध्यात्म शयन गीतिका

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

शुद्ध बुद्ध हो नित्य निरंजन, विशद ज्ञान के धारी हो।
इस जग की माया से निर्वृत्त, पूर्ण रूप अविकारी हो।।
इस शरीर से भिन्न अन्य तुम, सब चेष्टाओं को छोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।1।।

तुम हो ज्ञाता दृष्टा निर्मल, हो परमात्म स्वरूप अखण्ड।
सद्गुण के आलय जित् इन्द्रिय, तेजस्वी हो अमल प्रचण्ड।।
मानादिक मुदा को तजकर, राग-द्वेष को भी छोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।2।।

तुम हो शांत संयमित आतम, अविनाशी हो सिद्ध स्वरूप।
सब प्रकार के मल से निर्वृत, निष्कलंक हो ज्योति रूप।।

इस संसार की माया तजकर, छल छद्रम को भी छोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।3।।

मुक्त चिदात्मक हो तुम चेतन, एक चिरन्तन है स्वरूप।
हो चिद्प्रभाव मय बन्धु, 'विशद' अतीन्द्रिय तेरा रूप।।
मोह छोड़कर के इस तन से, परिजन से नाता तोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।4।।

कर्म रूप तुम नहीं हो चेतन, तुम हो पूर्णरूप निष्काम।
रत्नत्रय युत वेत्ता हो तुम, परम पवित्र हो आतम राम।।
चेतन से नाता तुम जोड़ो, काम भाव को तुम छोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।5।।

तुम प्रमाद से मुक्त सुनिर्मल, आतम ब्रह्म बिहारी देव।
दर्शन ज्ञान वीर्य सुखमय तुम, ऽनन्त चतुष्टय धारी एव।।
अपने चिद् आतम की रक्षा, में अपने मन को मोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।6।।

तुम कैवल्य भाव मय बन्धु, योग मुक्त तेरा स्वरूप।
सर्व तत्त्व वेत्ता हो चेतन, रोग मुक्त शुभ आतम रूप।।
चित् स्वरूप से निज को जोड़ो, शेष भाव सब तुम छोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।7।।

ज्ञान भाव आदि के कर्ता, तुम हो काम वासना मुक्त।
हो सर्वज्ञ सर्वदर्शी तुम, हो चैतन्य रूप संयुक्त।।
निज अभीष्ट परमातम से अब, 'विशद' आप नाता जोड़ो।
मात शांतला के वचनों से, बेटा तुम नाता जोड़ो।।8।।

***

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।।1।।

विषयों की आशा नहिं जिनके साम्यभाव धन रखते हैं,
निज-पर के हित-साधन में जो निश-दिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुःख समूह को हरते हैं।।2।।

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीव को झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन वनिता पर न लुभाऊँ संतोषामृत पिया करूँ।।3।।

अहंकार का भाव न रक्खूँ नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ।।4।।

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्य भाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे।।5।।

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे।।6।।

कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा भी भय या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे।।7।।

होकर सुख में मग्न न फूले दुःख में कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी श्मशान भयानक अटवी से नहिं भय खावे।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहनशीलता दिखलावे।।8।।

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञानचरित उन्नतकर अपना मनुज जन्म-फल सब पावें।।9।।

ईति भीति व्यापै नहिं जग में वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे।
रोग, मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्वहित किया करे।।10।।

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर ही रहा करे,
अप्रिय-कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे।
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से सब दुःख संकट सहा करें।।11।।

इत्याशीर्वादः

वैराग्य भावना

(कविवर भूधरदास कृत)

दोहा – **बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माहिं।**
त्यों चक्री नृप सुख करैं, धर्म विसारैं नाहिं।।1।।

(जोगीरास वा नरेन्द्र छन्द)

इह विधि राज करै नरनायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुखसागर में रमत निरंतर, जात न जान्यो कालो।।
एक दिवस शुभ कर्मसंजोगे, क्षेमंकर मुनि वंदे।
देख श्री गुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे।।2।।

तीन प्रदक्षिणा दे शिरनायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु-समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी।।
गुरु उपदेश्यो धर्म-शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे।।3।।

मुनि सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम बुधि भागी।
भव तन-भोग-स्वरूप विचारयो, परम धरम अनुरागी।।
इह संसार महावन भीतर, भरमत और न आवै।
जामन मरन जरा दौं दाझै जीव महादुख पावै।।4।।

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, बध बंधन भयकारी।।
सुरगति में परसंपत्ति देखे राग उदय दुख होई।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई।।5।।

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विगूचे, कोई तन के रोगी।।
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुःख बाहिर दीखै, किसही उर दुचिताई।।6।।

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै।।
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ दीखै, सब दीखै दुःख दाता।।7।।

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहे को शिव साधन करते, संजमसो अनुरागै।।
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई।।8।।

सात कुधातु भरी मल-मूरत, चाम लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है।।
नव-मल-द्वार स्रवै निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि-उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै।।9।।

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन-देह-स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।।
राचन-जोग स्वरूप न याको, विरचन-जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै, यामें सार यही है।।10।।

भोग बुरे भव रोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके।।
वज्र-अगनि विष से विषधर से, ये अधिके दुःखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई।।11।।

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने।।
ज्यों-ज्यों भोग-संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावैं।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंकै, लहर जहर की आवे।।12।।

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे-भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे।।
राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढ़ावनहारा।
वेश्या सम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा।।13।।

मोह महा-रिपु बैर विचार्‌यो जग-जिय संकट डारे।
तन-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी।।14।।

छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी।।
इत्यादिक संपत्ति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत कों, राज दियो बड़भागी।।15।।

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे।।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी।
ऐसी संपत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी।।16।।

दोहा - परिग्रह पोठ उतार सब, लीनो चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ।।

।। इतिश्री वज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना।।

बारह भावना

(मंगतरायजी कृत)

दोहा-छंद

बंदूँ श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग जीवन हित जान।।1।।

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम-अरु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रूक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी।।2।।

नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगी तन में।।
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह भावन को।।3।।

1. अथिर (अनित्य) भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।।
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल बहकर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता।।4।।

ओस-बूंद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्रानी।।

इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी।।5।।

2. अशरण भावना

काल सिंह ने मृग चेतन को, घेरा भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में।।
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटे।
वश नहि चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे।।6।।

चक्र रत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया।।
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूं ही उमर खोई।।7।।

3. संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोग से, सदा दु:खी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता।।
छेदन भेदन नरक पशुगति, वध बंधन सहना।
राग-उदय से दु:ख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना।।8।।

भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली।।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिले शुभाशुभ का मेटो लेखा।।9।।

4. एकत्व भावना

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख-दु:ख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी।।

कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा।।10।।

ज्यों मेले में पंथीजन मिल नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते।।
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै।।11।।

5. अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ, उठ दौड़ैं थक थक के।।
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।।12।।

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतन तैं बिछुड़ै, ज्यों पय अरु पानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरुष थकै न तोलों उद्यम सौं चरना।।13।।

6. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली।।
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी।।14।।

काना पौंड़ा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै।।

केसर चंदन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी।।15।।

7. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को।।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बंधन को।।16।।

पन-मिथ्यात योग-पंद्रह द्वादश-अविरत जानो।
पंचरु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।।
मोह-भाव की ममता टारै, पर परणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानीजन होते।।17।।

8. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर, क्यों नहिं मन लाता।।
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावन को।।18।।

यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
स्वप्न दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध, भावन संवर भावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मझधार पार जावै।।19।।

9. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म, निर्जरा, ह्वै सोखनहारी।।

उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषै माली।।20।।

पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करकै, मिटे जगत फेरा।।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुल्हन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी।।21।।

10. लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप-कर-कटी भये, षट्, द्रव्यनसों मानो।।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव रु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है।।22।।

पापपुण्यसों जीव जगत में, नित सुख-दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर, औरन के धरता।।
मोहकर्म को नाश, मैटकर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो बासा।।23।।

11. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी।।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना।।24।।

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्धभाव करना।।

दुर्लभ तैं दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै।।25।।

12. धर्म भावना

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे,
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे।
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावैं,
कोई छिनक कोई करता से, जग में भटकावैं ।।26।।

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी।।
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतन तैं इकदिन, भव-सागर-तरना।।27।।

इत्याशीर्वादः।

बारह भावना

(कविवर भूधरदास जी कृत)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी वार।।1।।

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार।।2।।

दाम बिना निर्धन दु:खी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यों छान।।3।।

आप अकेला अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।4।।

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर संपत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।।5।।

दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन-गेह।।6।।

मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म-चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।7।।

सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमें।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्मचोर आवत रुकैं।।8।।

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शौधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, बैठे पूरब चोर।।9।।

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।10।।

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष-संठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।11।।

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।12।।

जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिंतन चिंता रैन।
बिन जाचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।।13।।

इत्याशीर्वादः।

सोलह कारण भावना

– आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

दोहा – **सोलह कारण भावना, विशद भाव से भाय।**
तीर्थंकर पदवी लहे, मोक्ष महाफल पाय।।

दर्शन विशुद्धि भावना

मोह तिमिर से आच्छादित है, तीन लोक सारा।
काल अनादि से भटके हैं, मिथ्या भ्रम द्वारा।।
कभी नरक नर सुर गति पायी, पशु गति में भटके।
राग द्वेष मद मोह प्राप्त कर, विषयों में अटके।।
सप्त तत्व छह द्रव्य गुणों में, श्रद्धा उर धरना।
मिथ्या भाव छोड़कर सम्यक्, रुचि प्राप्त करना।।
शंकादि दोषों को तजकर, भेद ज्ञान पाना।
दरश विशुद्धि गुणीजनों ने, या को ही माना।।1।।

विनय सम्पन्न भावना

अहंकार दुर्गति का कारण, सद्गति का नाशी।
निज के गुण को हरने वाला, दुर्गुण की राशि।।
मद की दम को दमन करें जो, बनकर श्रद्धानी।
नम्र भाव धारण करते हैं, जग में सद्ज्ञानी।।
उच्च गोत्र का कारण बन्धु, मृदुल भाव गाया।
पुण्य पुरुष होता है जिसने, विनय भाव पाया।।
'विशद' विनय सम्पन्न भावना, भाव सहित गाये।
तीर्थंकर सा पद पाकर के, सिद्ध शिला जाये।।2।।

अनातिचार शीलाव्रत भावना

नर भव पाया रत्न अमौलिक, विषयों में खोता।
भोगों में अनुराग लगा जो; अतीचार होता।।
अतीचार से रहित व्रतों, को पाले जो कोई।
प्रकट होय आतम निधि उसकी, सदियों से खोई।
कृत-कारित अरु अनुमोदन से, मन-वच-तन द्वारा।
नव कोटी से शील व्रतों का, पालन हो; प्यारा।।
सोलहकारण शुभम् भावना, भाव सहित भावे।
अनतिचार व्रत शील से अपना, जीवन महकावे।।3।।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना

ज्ञानावरणी कर्म ने भाई, जग में भरमाया।
सम्यक् ज्ञान हृदय में मेरे जाग नहीं पाया।।
सम्यक् श्रद्धा के द्वारा अब, सम्यक् ज्ञान जगाना।
ज्ञाता बनकर ज्ञान के द्वारा, चित् में चित्त लगाना।।
अजर अमर पद पाने हेतु, ज्ञान सुधामृत पाना।
ॐकार मय जिनवाणी के, शुभ छन्दों को गाना।।
ज्ञान योग होता अभीक्ष्ण, यह शुद्ध भाव से ध्याना।
'विशद' ज्ञान के द्वारा भाई, सिद्ध शिला को पाना।।4।।

संवेग भावना

है संसार अपार असीमित, पार नहीं पाया।
काल अनादि से प्राणी यह, जग में भरमाया।।
भय से हो भयभीत जानकर, इस जग की माया।
मंगलमय संवेग भाव बस, ये ही कहलाया।।

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण को, सम्यक् धर्म कहा।
मोक्ष महल का सम्यक् साधन, अनुपम यही रहा।।
धर्म और उसके फल में, जो हर्ष भाव आवे।
सु संवेग भाव शास्त्रों में, ये ही कहलावे।।5।।

शक्तितस्त्याग भावना

राग आग से जलकर अब तक, यूँ ही काल गया।
परिणत हुए भोग विषयों को, माना नया-नया।।
निज निधि को खोकर के अब तक, पर पदार्थ पाये,
प्रकट दिखाई देते हैं पर, हमने अपनाये।।
पर परिणत से बचकर हमको, निज निधि को पाना।
छोड़ विकल्पों को अब सारे, निज को ही ध्याना।।
यथाशक्ति जो त्याग करे वह, मोक्ष मार्ग जानो।
जैनागम में त्याग शक्तिसः, इसी तरह मानो।।6।।

शक्तितस्तप भावना

काल अनादि से यह प्राणी, तन का दास रहा।
साथ निभायेगा यह मेरा, ये विश्वास रहा।।
प्यास बढ़ाता है पीने से, जैसे जल खारा।
मृगतृष्णा बढ़ती रहती है, मिले न जल धारा।।
पल-पल करके नर जीवन का, समय निकल जाता।
इन्द्रिय रोध किये बिन भाई, मिले ना सुख साता।।
इच्छाओं का दमन करे, फिर महामंत्र जपना।
यथा शक्ति तप करना भाई, शक्तिसः तपना।।7।।

साधु समाधि भावना

काल अनादि से मिथ्यावश, जन्म मरण पाया।
निज शक्ति को भूल जगत् में, प्राणी भरमाया।।
आधि व्याधि अरु पद उपाधि में, नर जीवन खोया।
मोह की मदिरा पीकर भारी, कर्म बीज बोया।।
जन्म मरण होता है तन का, चेतन है ज्ञाता।
कर्म करेगा जैसा प्राणी, वैसा फल पाता।।
चेतन का ना अंत है कोई, ना ही आदी है।
श्रेष्ठ मरण औ सत् अनुभूति, साधु समाधि है।।8।।

वैय्यावृत्ती भावना

स्वारथ का संसार है भाई, सारा का सारा।
लालच की बहती है जग में, बड़ी तीव्र धारा।।
पर उपकार को भूल रहे हैं, इस जग के प्राणी।
पर में निज उपकार छुपा है, कहती जिनवाणी।।
साधक करे साधना अपनी, संयम के द्वारा।
रत्नत्रय अपने जीवन से, जिनको है प्यारा।।
विघ्न साधना में कोई भी, उनकी आ जावे।
वैय्यावृत्ती विघ्न दूर, करना ही कहलावे।।9।।

अर्हद् भक्ति भावना

चार घातिया कर्मनाशकर, 'विशद' ज्ञान पाये।
समोशरण की सभा में बैठे, अर्हत् कहलाये।।

दिव्य देशना जिनकी पावन, जग में उपकारी।
सुहित हेतु पाते इस जग के, सारे नर-नारी।।
अर्हत् होते हैं इस जग में, सद्गुण के दाता।
अतः सार्व कहलाए भगवन्, भविजन के त्राता।।
हो अनुराग गुणों में उनके, भाव सहित भाई।
अर्हत् भक्ति गुणीजनों ने, इसी तरह गाई।।10।।

आचार्य भक्ति भावना

दर्शन ज्ञान चरित तप साधक, वीर्यचरण धारी।
रत्नत्रय का पालन करते, गुरु पंचाचारी।।
भक्तों के हैं भाग्य विधाता, मुक्ती पद दाता।
शिक्षा दीक्षा देने वाले, जन-जन के त्राता।।
सत्संयम की इच्छा करके, गुरु के गुण गाते।
भाव सहित वंदन करने को, चरणों में जाते।।
गुरु चरणों की भक्ति जग में, होती सुख दानी।
गुणियों ने आचार्य भक्ति शुभ, इसी तरह मानी।।11।।

बहुश्रुत (उपाध्याय) भक्ति भावना

ग्यारह अंग पूर्व चौदह के, होते जो ज्ञाता।
सम्यक् दर्शन ज्ञान के गुरुवर, होते हैं दाता।।
संतों में जो श्रेष्ठ कहे हैं, समता के धारी।
ज्ञान ध्यान तप में रत रहते, ऋषिवर अनगारी।।

करते हैं उपदेश धर्म का, जो मंगलकारी।
संत दिगम्बर और निरम्बर, नीरस आहारी।।
उपाध्याय को जग भोगों से, पूर्ण विरक्ति है।
भाव सहित गुण गाना उनके, बहुश्रुत भक्ति है।।12।।

प्रवचन भक्ति भावना

द्रव्य भाव श्रुत के भावों में, तत्पर जो रहते।
घोर तपस्या करने वाले, परिषह भी सहते।।
चेतन का अनुभव जो करते, निर्मल चित्धारी।
चित् को निर्मल करने वाली, वाणी मनहारी।।
सप्त तत्व झंकृत होते हैं, जिनवाणी द्वारा।
दिव्य देशना निःसृत होती, जैसे जलधारा।।
जिस वाणी से जागृत होवे, चेतन शक्ति है।
'विशद' ज्ञान में वर्णित पावन, प्रवचन भक्ति है।।13।।

आवश्यकापरिहाणी भावना

नहीं कभी सत् कर्म किया है, जीवन व्यर्थ गया।
भूले हैं कर्त्तव्य स्वयं के, आती बड़ी दया।।
श्रावक के गुण क्या होते हैं, जाने नहीं कभी।
पाप व्यसन जो होते जग में, करते रहे सभी।।
होते क्या कर्त्तव्य हमारे, उनको पाना है।
व्रत संयम से जीवन अपना, हमें सजाना है।।
कर्त्तव्यों के पालन हेतु, भावों से भरना।
आवश्यक ऽपरिहार भावना, सम्पूरण करना।।14।।

मार्ग प्रभावना भावना

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण यह, सम्यक् धर्म कहा।
काल अनादी से यह बन्धु, मोक्ष का मार्ग रहा।।
मोक्ष मार्ग पर आगे चलकर, और चलाना है।
मंजिल को जब तक न पाया, बढ़ते जाना है।।
महिमा अगम है जिन शासन की, कैसे उसे कहें।
संयम तप श्रद्धा भक्ति में, हरपल मगन रहें।।
मोक्ष मार्ग औ जैन धर्म की, महिमा जो गाई।
पथ प्रभावना सत् संतों ने, जग में फैलाई।।15।।

प्रवचन वत्सलत्व भावना

गाय का ज्यों बछड़े के प्रति, स्नेह अटल होता।
काय वचन और मन से शुभ, अनुराग विमल होता।।
स्वार्थ रहित साधर्मी जन से, जो अनुराग रहा।
श्री जिनेन्द्र ने जैनागम में, ये वात्सल्य कहा।।
द्वेष भाव के द्वारा हमने, कितने कष्ट सहे।
मद माया की लपटों में हम, जलते सदा रहे।।
सदियाँ गुजर गयीं हैं लेकिन, धर्म नहीं पाया।
चेतन की यह भूल रही अरु रही मोह माया।।16।।

दोहा

शब्द अर्थ की भूल को, पढ़ना सुधी सुधार।
पंच परम गुरु के चरण वंदन बारम्बार।।

इत्याशीर्वाद :

सामायिक करने की प्रारंभिक विधि

दिग्वंदना

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करके नीचे लिखा हुआ पढ़कर प्रतिदिशा में तीन आवर्त व एक शिरोनति करना चाहिये।)

1. ।। पूर्व की ओर मुख करके पढ़ें।।

पूर्व दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि, कृत्रिमा-कृत्रिम जिन चैत्य-चैत्यालय जहाँ-जहाँ हों उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

2. ।। दक्षिण की ओर मुख करके पढ़ें।।

दक्षिण दिशा विदिशा में अरहंत सिद्ध साधु, केवलि, कृत्रिमा-कृत्रिम जिन चैत्य-चैत्यालय जहाँ-जहाँ हो उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

3. ।। पश्चिम की ओर मुख करके पढ़े।।

पश्चिम दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि, कृत्रिमा-कृत्रिम जिन चैत्य-चैत्यालय जहाँ-जहाँ हो उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

4. ।। उत्तर की ओर मुख करके पढ़ें।।

उत्तरदिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि, कृत्रिमा-कृत्रिम जिन चैत्य-चैत्यालय जहाँ-जहाँ हो उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

सामायिक करने की दृढ़ प्रतिज्ञा

हे भगवान ! मैं आपको नमस्कार करता हुआ संध्याकाल की देव वंदना में सामायिक स्वीकार करता हूँ। अर्थात् सामायिक काल पर्यन्त* (इस समय तक) किसी प्रकार का आरम्भ नहीं करूँगा और न इस स्थान को छोड़कर स्थानांतर गमन करूँगा तथा जो मेरे शरीर पर परिग्रह है, उससे निर्ममत्व होता हुआ, अन्य सब परिग्रहों को छोड़ता हूँ।

* (यहाँ समय की मर्यादा कर लेना चाहिये।)

सामायिक काल में करने योग्य चिंतवन

1. सम्पूर्ण भव्यों के लिये इष्ट सिद्धि के सर्वोत्तम कारण तथा सम्यक दर्शन, ज्ञान, चरित्र के प्रतिपादन करने वाले अनन्तानंत सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।
2. प्रणाम करते हुए इन्द्रों की मुकुटों पर जिन प्रभु के चरणों की प्रभा प्रकाशमान हो रही है, ऐसे तीनों लोक के मंगल स्वरूप श्री वर्द्धमान स्वामी को मेरा नमस्कार हो।
3. सिद्ध हो चुके हैं समस्त कार्य जिनके तथा परम सुख को प्राप्त हुए सम्पूर्ण सिद्धों को भक्तिवश हम प्रणाम करते हैं। वे सिद्ध प्रभु हमें अविनाशी मोक्ष प्रदान करें।
4. मैं निर्दोष सिद्धों को तथा मुनि समुदाय को नमस्कार करता हूँ, तथा संसार के परिभ्रमण को नाश करने वाली सामायिक को धारण करता हूँ।
5. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से मैंने कभी किसी की निन्दा की हो, तो मैं मन, वचन, काय से उसका प्रतिक्रमण (पश्चाताप) करता हूँ।
6. मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझ पर क्षमा करें, मेरा सब प्राणियों से मैत्री भाव है, किसी से बैर भाव नहीं है।
7. सर्व प्राणियों से सम भाव रखना, संयम पालन करना, पवित्र भाव रखना तथा आर्त रौद्र परिणामों का छोड़ना ही सच्चा सामायिक वृत है।
8. मैं सम्पूर्ण प्राणियों से समता रखता हूँ, किसी से बैर भाव नहीं है, मैं सर्व आशाओं को छोड़कर समाधि का आश्रय लेता हूँ।
9. राग द्वेष अथवा मोह से मैंने किसी जीव की विराधना की हो, तो वे मुझ को क्षमा करें, मैं भी उनको बार-बार क्षमा करता हँ।
10. मन, वचन, काया से अथवा कृत कारित अनुमोदना से मैंने अपने रत्नत्रय में जो दोष लगाये हों, उनकी मैं निन्दा ग्रही करता हूँ और उनका परित्याग करता हूँ।
11. तिर्यन्च, मनुष्य देवकृत, उपसर्ग को मैं इस समय धैर्य पूर्वक सहन करूंगा तथा शरीर, आहार व कषायों को मन, वचन, काय से छोड़ता हूँ।
12. मैं राग, द्वेष, भय, शोक, हर्ष, विषाद, दीनता तथा सब प्रकार की प्रीति और अप्रीति को मन, वचन, काय से छोड़ता हूँ।

13. जीवन, मरण, लाभ, हानि, योग, वियोग, बंधु-शत्रु तथा सुख-दुख में मेरे सदा समता भाव रहें।

हे भगवन् ! मैं इर्यापथ की आलोचना करता हूँ। पूर्वोत्तर, दक्षिण, पश्चिम, चारों दिशा और ईशानादि विदिशाओं में इधर-उधर फिरने और ऊपर की दृष्टिकर चलने से मैंने प्रमादवश द्विन्द्रियादिक प्राणियों का घात किया हो, कराया हो व अनुमति की हो, वे पाप मिथ्या होवें।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धेसरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि, केवली-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ॐ नमोऽर्हते स्वाहा।

सामायिक काल में करने योग्य भावना

शुद्ध निश्चय नय से मेरी आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, एक है, निजानंद है, निष्कषायी, अपवेदी, अकर्त्ता, निकल (शरीर रहित), अचल निर्लेप, वीतरागी, अविनाशी, अनुपम, अमेय (टंकोत्कीर्ण), अक्षय, अमल, अजर, अरुज, अभय, एकाकार, अनादि, अनन्त, अव्याबाध, अजेय, अतीन्द्रिय एवं सुखमय है।

मैं नित्यानन्द, सहजशुद्ध चैतन्य स्वरूपी जीव द्रव्य हूँ। मैं सदा निजानन्द स्वरूप में लवलीन हूँ।

मैं अखण्ड, अद्वैत, स्वाभाविक चैतन्य विलास से अक्षय आनन्द का भोक्ता हूँ। शाश्वत सुख का स्वामी, सदा शिवस्वरूप आत्म भगवान् (भगवान आत्मा) हूँ।

मैं निश्चय से परऔपाधिक भावों से रहित सुखानंद, ज्ञानानंद, ज्योतिर्मयी, नित्य प्रकाशमान, निपुण, परमपुरुषोत्तम, भगवान स्वरूप हूँ।

एक अनुपम अनन्य परिपूर्ण मेरा धाम है। मैं सदा काल मेरी आत्मा में तृप्त हूँ। शुद्ध त्रिकाली अखंड, चिदानन्द, परमात्म स्वरूप शक्ति से भगवान स्वरूप हूँ। मैं अनन्त, सर्वज्ञ, वीतरागी, निराकार, निरंजन, ज्ञाता द्रष्टा, चिन्मूर्ति, शुद्ध स्वरूपी, निर्मोही, निष्कंप, निर्ममत्व, अरुपी, अमूर्तिक आत्म द्रव्य हूँ।

मैं न परका कर्ता हूँ, न भोक्ता हूँ, न रागी हूँ, न द्वेषी हूँ, सर्व पर–भावों से भिन्न हूँ, नौकर्म से भिन्न हूँ, द्रव्य कर्म से भिन्न हूँ, भाव कर्म से भिन्न हूँ, परपरणति से भिन्न हूँ, क्षणिक भाव से भिन्न हूँ, कर्मजन्य औपाधिक भावों से भिन्न हूँ, पंच पापों से भिन्न हूँ और सर्व पर द्रव्यों से भिन्न हूँ।

मैं मेरे से अभिन्न हूं, एकाकार हूँ, चिदानन्दस्वरूप हूँ। मैं आत्मानन्दी, सहजानन्दी, ज्ञानानन्दी, चिदानन्दी, निजानन्दी, परमानन्दी, जिनेश्वर, सिद्धेश्वर, बुद्धेश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, शिव, गणपति, पुरुषोत्तम, परमानंद, आत्माराम, चैतन्य, अद्वैत आदि परमानन्द स्वरूप निज कारण परमात्मा से परम तपोधन, शुद्ध, निश्चल, उपयोग–स्वरूप हूँ। मेरा चैतन्य विलास–निर्विकार अनुपम धाम स्वरूप है जैसेह्नह्न तुषमाष भिन्न, जल से कमल भिन्न है। इसी तरह शरीर अलग है, आत्मा अलग है, शरीर नाशवान है। जीव अजर अमर अविनाशी है।

मैं अखंडानन्द, एक अद्वैत चेतन स्वरूप भावों से भरपूर शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ। मैं शुद्ध निश्चयनय से विचार करता हूँ तो मैं न नारकी हूँ न देव हूँ, न तिर्यंच हूँ, न मनुष्य हूँ, न मेरे में गुणस्थान हैं, न मैं पर का कर्त्ता, हर्त्ता व भोक्ता हूँ, न बालक हूँ, न युवा हूँ, न वृद्ध हूँ, न मैं क्रोधादि, रागादि परिणामों का कर्ता हूँ। ये सर्व पुद्गल कृत–कार्य हैं, मैं तो उनको मात्र जानने वाला ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ। न मैं इन अवस्थाओं का कर्ता हूँ, न भोक्ता, मैं एक अखंडानन्द चैतन्य मात्र ज्ञाता दृष्टा स्वभावी आत्मा हूँ। सदा मैं मेरे चैतन्य परिणाम का कर्ता और स्वाभाविक सुख का भोक्ता हूँ, पर का न मैं किंचित् मात्र कर्त्ता हूँ, न भोक्ता हूँ।

आरम्भ और बहु परिग्रह के धारक अज्ञानी (व्यवहारी) जीव अपने रागादि सद्भाव से उन नरकादि दुर्गतियों का भोग करते है। जिनसे उनका जन्म मरण (संसार) नहीं मिटता है। मैं उन सर्व कृतियों से भिन्न हूँ। संसार दुःख कूप है, अनित्य है, अशरण है, दुःखमय है, नश्वर है। मैं सुख रूप नित्य शरण रूप ज्ञायक, ज्ञान दर्शन से परिपूर्ण हूँ। मैं एक परम शुद्धपारिणामिक भाव का धारक हूँ।

मैं परम चैतन्यमयी एक ज्ञान सत्तामात्र सुख में उत्कृष्ट आत्मिक तत्व के अनुभव में लवलीन हूँ, मैं स्वाभाविक निश्चयनय से सदा निरावरण, शुद्ध ज्ञान स्वरूपी हूँ, मैं सहज चैतन्यमय शान्ति का धारक हूँ।

शुद्ध निश्चयनय से मेरा आत्मा सहज दर्शन गुण से प्रकाशमान, परिपूर्ण, चैतन्य मूर्ति, चेतना विलास को अनुभव करने वाला है। ऐसे सर्व विभाव भावों, विभाव पर्यायों को त्याग कर मैं मेरे आत्मा का चिंतवन करता हूँ। मैं अपने चित्तको सर्व इन्द्रिय विषयों से हटाकर मेरे शुद्ध आत्मिक द्रव्य गुण पर्याय में लगाता हूँ जिससे मुझे शीघ्र ही मुक्तिरमा की प्राप्ति हों।

मैं निश्चयनय से सहज शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावी निर्विकल्प हूँ, उदासीन हूँ, निजानन्द, निरंजन, शुद्धात्मा सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप निश्चय रत्नत्रयमयी, निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानन्दरूप, आनन्दानुभूति मात्र स्व–संवेदन ज्ञान से गम्यहूँ, अन्य उपायों से गम्य नहीं हूँ, निर्विकल्प, निजानन्द, ज्ञान मात्र से ही मेरी प्राप्ति है, मैं ज्ञान दर्शन से परिपूर्ण हूँ। मैं तीन लोक, तीन काल में मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से उत्पन्न सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, लाभ–अलाभ, मानापमान, भोगापभोग, निन्दा, प्रशंसा, ममता अहंता, पाप–पुण्य, श्वेत–श्याम, गरीब–अमीर, ऊँच–नीच, कुल जाति, स्पर्श्यास्पर्श आदि सर्व विभाव पर्यायों से भिन्न एक चिदानन्द आत्माराम हूँ। सर्व जीव मेरे समान हैं, इसलिये मैं किसको मित्र कहूं व किसे शत्रु कहूं ? मेरी आत्मा अजर–अमर हैं। शरीर नाशवान है। देखने में शरीर व आत्मा एक दिखती हैं जैसे दूध–पानी। मगर जैसे अंगूठी में सोना अलग है, हीरा अलग है, नारियल खोल अलग है गोला अलग हैं, इसी तरह आत्मा है, आत्मा चेतन है, शरीर अचेतन नाशवान है।

मैं राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ पाँचों इन्द्रियों के विषय व्यापार मन, वचन, काय द्रव्यकर्म, भाव कर्म नोकर्म ख्याति, लाभ, पूजा, देखे, सुने, अनुभव भोगों की वांछा रूपी निदान, माया, मिथ्यात्व तीनों शल्यों से और सर्व प्रकार के विकार विभाव और परभावों से भिन्न और निज भावों से अभिन्न एक परमानन्द, टंकोत्कीर्ण, निर्मोही, ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ।

मैं पर्यायार्थिक नय से अवलोकन करता हूँ तो मेरा आत्मा सर्व पर्यायों से संयुक्त है। ये सर्व विभाव भाव मेरे पर्यायार्थिक नय से प्रतिभास होते हैं, परन्तु औदयिक भाव हैं और मैं परम शुद्ध पारिणामिक भाव का स्वामी हूँ। मेरा इनसे ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है परन्तु कर्त्ता कर्म सम्बन्ध कदापि न था, न है और न हो सकता

है, क्योंकि जन्म, जरा, मृत्यु, विषय, कषाय, बध, उदय, सत्ता, संस्थान, संहनन आदि कर्म के विपाक हैं। मैं इनका जानने वाला हूँ निश्चयनय से मैं एक शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञाता द्रष्टा, अविनाशी, असहाय, अतीन्द्रिय, विमल, अमल, ज्ञायक मात्र, वीतराग स्वरूपी ज्ञानानन्द–निराकुल–सुखानन्द का स्वामी परम तत्वरूप हूँ। मैं मेरे श्रुतज्ञान की भावना के अवलम्बन से सामान्य, विशेषात्मक, भेदाभेदरूप अपने ज्ञानस्वरूपी आत्मा का निरीक्षण करता हूँ। जिससे चैतन्य ज्योति प्रकाशमान होती है, जो हजारों सूर्य की किराणों से भी अनन्तगुणी उज्जवल है व हजारों चन्द्रमा से अनन्तगुणी निर्मल है। मैं ज्यों–ज्यों आर्ष वचनों का अभ्यास करता हूँ व परमागम का चिन्तन करता हूँ। त्यों–त्यों मेरे में तीनों लोकों के स्वरूप को प्रकाशित करने में सूर्य के समान भेद–विज्ञानरूप कला जागृत होती है और जैसे–जैसे भेद–विज्ञान बढ़ता जाता है वैसे–वैसे ही राग निवृत्ती रूप स्वरूप स्थिरता बढ़ती जाती है और ज्ञान निश्चल निष्कम्प सुमेरु पर्वत के समान अचल अडोल हो जाता है अत: मैं आर्ष वचनों का अभ्यास पूर्वक श्रद्धान करता हूँ।

मैं चेतन, असंख्यात प्रदेशी मूर्तिक से रहित, ज्ञान, दर्शन लक्षण वाला, सिद्धरूप, कर्ममल रहित, शुद्धात्मा हूँ। मैं अन्य पदार्थ नहीं हूं और अन्य पदार्थ मेरे रूप नहीं हैं। मैं अन्य का नहीं हूँ और न अन्य ही मेरे हैं अन्य–अन्य है, मैं मैं हूँ। अन्य, अन्य का है, मैं, मेरा हूं, शरीर जुदा है, मैं जुदा हूँ। मैं चेतन हूँ, अन्य, अन्य का है, मैं, मेरा हूं, शरीर जुदा है, मैं जुदा हूँ। मैं चेतन हूँ, शरीर अचेतन है, शरीर अनेक परमाणुओं का पिंड है, मैं एक हूं, शरीर नष्वर है मैं अविनाशी हूं, संसार के अचेतन पदार्थ मेरे रूप नहीं होते और मैं अचेतन नहीं होता मैं ज्ञानात्मा हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं अन्य किसी का नहीं हूँ। जो यहाँ शरीर के साथ मेरा स्व–स्वामी सम्बन्ध हो रहा है, व एकत्व का भ्रम हो रहा है, वह सब पर (कर्म) के निमित्त से हो रहा हे, स्वरूप से नहीं। जीवादि द्रव्य के (यथार्थ) के स्वरूप को जानने वाला मैं अपने द्वारा अपने में अपने को जैसा कि मैं हूँ देखता हुआ पदार्थों के विषय में उदासीन हूँ, राग द्वेष रहित होता हुआ मध्यस्थ हूँ। मैं सत्द्रव्य, चित् ज्ञाता द्रष्टा व हमेशा उदासीन स्वरूप हूँ और प्राप्त हुए अपने शरीर के प्रमाण हूँ।

व उससे (शरीर से) पृथक् हुआ आकाश की तरह अमूर्त हूँ। मैं सदा ही स्वरूपादि चतुष्टय (स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव) की अपेक्षा सत्रूप हूं और पर रूपादि की अपेक्षा असत् रूप हूँ। जो कुछ नहीं जानते हैं, न जिसने कुछ जाना है और न भविष्य में कभी जानते, इस प्रकार त्रैकालिक अज्ञानता को लिये हुये जो शरीर आदिक हैं, वैसा मैं नहीं हूँ। जिसने पहले जाना था, जो आगे (भविष्य में) जानेगा तथा वर्तमान में जो चिंतवन करने योग्य है, ऐसा मैं चिद् द्रव्य हूँ। यह जगत स्वयं न तो अच्छा (इष्ट) है और न बुरा (अनिष्ट) है किन्तु उपेक्षणीय है तथा मैं भी न तो राग करने वाला हूँ, न द्वेष करने वाला हूँ किन्तु उदासीन रूप हूँ। शरीर आदिक मुझसे भिन्न है, मैं तो वस्तुत: उनसे भिन्न हूँ, मैं इनका कोई नहीं हूँ और न ये ही मेरे कोई हैं। इस प्रकार भलीभाँति अपनी आत्मा को अन्य पदार्थों से भिन्न समझ, मैं तन्मयी भावों (आत्मीय भावों) को करता हुआ कुछ भी चिंतवन नहीं करता हूँ। आत्मा स्व और पर की ज्ञप्ति (जानना क्रिया) रूप है, अत: उसका अन्य और कारण नहीं हैं। इसलिए चिंता को हटाकर स्व संवित्ति (लीनता) के द्वारा ही अनुभव करना चाहिए। दर्शन, ज्ञान व समता रूप होने से जानने वाला, देखने वाला एवं उदासीन रहने वाला जो चित् सामान्य विशेष स्वरूप आत्मा हैं, उसे अपनी आत्मा के द्वारा ही अनुभव करना चाहिए। 'आत्मा कर्मजन्य (कर्म से पैदा होने वाला) समस्त भावों से भिन्न हैं ज्ञान स्वभावी हैं और उदासीन है।' ऐसा हमेशा स्वयं चिंतवन करे। मिथ्या आग्रह व मिथ्या ज्ञान से रहित जो आत्मा का स्वरूप है जिसे माध्यस्थ भाव भी कहते हैं उसको अपने में स्वयं ही अनुभव नहीं हैंह्नह्न जैसे तिल में तेल है, पत्थर व लकड़ी में आग, गन्ने में रस है, मेंहदी की हरी पत्ती में लाल रंग है वह दिखता नहीं है, इसी तरह से आत्मा ज्ञान नहीं होने से दिखती नहीं है। वह रुपादि रहित होने से इन्द्रिय ज्ञान द्वारा जाना नहीं जा सकता, वितर्क भी उसे नहीं जान सकते क्योंकि वे (वितर्क) अस्पष्ट तर्कणारूप होते हैं। दोनों (इन्द्रियज्ञान व वितर्क) की प्रवृत्ति रुक जाने पर, बिल्कुल स्पष्ट अतीन्द्रिय और अपने द्वारा जानने योग्य वह (माध्यस्थ स्वरूप) स्व संवित्ति के द्वारा ही देखना चाहिए। शरीर का प्रतिभास (भान) न होने पर भी जो स्वतंत्र रूप से मालूम होती है ऐसी वह ज्ञान रूप चेतना स्वयं दिखाई पड़ती है। समाधि में

स्थित पुरुष को यदि स्वरूप आत्मा का अनुभव नहीं होता तो वह उसका ध्यान ही नहीं है अपितु वह मूर्च्छावान् है और उसकी वह मोह रूप दशा है। इसलिए उस आत्मा के स्वरूप का अनुभव करने वाला मुमुक्षु उत्कृष्ट एकाग्रता को पाता है व स्वाधीन वचनों के अगोचर आनन्द को प्राप्त करता है। ऐसे अपने आत्मा का अवलोकन करना चाहिए। जैसे धूल धोया (मिट्टी को पानी में से धोकर उसमें से सोना निकालने वाला) कीचड़ (मिट्टी) में साधनों द्वारा सोना प्राप्त कर आनन्दित होता है वैसे ही ज्ञानी आत्मा कर्म रूपी कीचड़ में से चैतन्य रूपी सोने को तपश्चरणादि साधनों द्वारा उठाकर (प्राप्त कर) बड़ा आनन्दित होता है ऐसी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के साधनों में आत्म चिंतवन एक मुख्य साधन है, उसके बिना अन्य साधन कार्यकारी नहीं है।

श्री पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।।
चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।।
चत्तारिलोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा।
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमों ।।
चत्तारिसरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि।
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।।

अढ़ाई द्वीप, दो समुद्र सम्बन्धी पन्द्रह कर्मभूमि क्षेत्र में रहने वाले तीर्थंकरों को, जिनेश्वरों को, केवलियों को, (अंतकृत्केवली को, उपसर्ग केवली को, सामान्य केवली को, मूक केवली को, सातिशय केवली को अनुबद्ध केवली को और संतत केवली को), गणधरों को चौसठ ऋद्धि धारी मुनीश्वरों को, धर्माचार्यों को, धर्म के नायकों को द्वादशांग रूप अमृत का पान कराने वाले ऋषीश्वरों को, ऐसे अढ़ाई

द्वीप के सब मिलाकर तीन कम नो करोड़ ऋषीश्वरों को एवं चतुर्विध (मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका) संघ को मैं भाव-भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

धर्म ही प्रधान है जो चारों गतियों का अन्त करने के लिए उत्तम है, संसार भय को नाश करने वाले तीर्थङ्कर केवली, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और सर्व साधु ये पंच-परमेष्ठी हैं। ये सत्य मार्ग का प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं, इसलिए इनकी साक्षी पूर्वक मैं सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्र को धारण करता हूँ, दूसरे को इस सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश करूँगा, मुझसे इस मार्ग पर चलते हुए कोई अतिचार, दोष लगे हों, तो उनकी शुद्धि के लिये आत्मा से नम्रता पूर्वक मन, वचन, काय की विशुद्ध भावना से नमस्कार करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करना)

* जिन चतुर्विंशतिस्तवन *

(मैं) ॐकार को नमस्कार करता हूँ। परमात्मा को, अनेकान्त को, और सन्तों को नमस्कार करता हूँ। मैं उन तीर्थंकरों को, जिनवरों को, केवलियों को, अनन्त जिनों को तथा नरलोक में श्रेष्ठ लोगों से पूज्य हैं और रजोमल से रहित हैं ऐसे मुनीश्वरों को नमस्कार करता हूँ।

लोक में ऊद्योत करने वाले धर्म प्रधान जो तीर्थरूप हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान की वन्दना करता हूँ और कर्मरूपी शत्रुओं का हनन करने वाले अरिहंत केवलज्ञानी चौबीस तीर्थंकरों का भी मैं स्तवन करता हूँ।

श्री ऋषभदेव (आदिनाथ), अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ (पुष्पदन्त), शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) पार्श्वनाथ और वर्द्धमान (महावीर स्वामी) को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार कर्मरज और जनम मरण से रहित ऐसे चौबीस तीर्थङ्कर केवली भगवान मेरा कल्याण करो, कल्याण करो, कल्याण करो।

नोट :- जम्बू द्वीप, धातकी खण्ड आधा पुष्वर से अढ़ाई द्वीप और लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र दो समुद्र मध्य सम्बंधी पाँच विदेहक्षेत्र में एक समय में अधिक से अधिक 170 तीर्थंकर होते हैं।

जिनकी महिमा कीर्तिरुप से गायी गई है ऐसे लोक में उत्तम सिद्ध भगवन्त मुझे आरोग्य, ज्ञान, समाधि और बोधि लाभ दे।

चन्द्र जैसे निर्मल और सागर जैसे गंभीर ऐसे सबका हित करने वाले सिद्ध भगवान मुझे सिद्धी प्रदान करें।

तीन लोक में जितने जिन-चैत्यालय हैं उनमें विराजमान जिन-चैत्यों को सदैव आवर्त करके भक्तिभाव से मैं नमस्कार करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

महावीर स्तवन

श्रीमते वर्द्धमानाय नमों नमितविद्विषे ।
यद् ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।।

मोहादि भयंकर शत्रुओं का नाश करने वाले और लोक को जानने वाले ऐसे श्री वर्द्धमान स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलौकानां यद्विद्या दर्पणायते ।।

जिनकी केवलज्ञान विद्या आलोक सहित तीनों लोकों को दर्पण के सदृश प्रतिभाषित करती है और जिनकी आत्मा कर्ममल रहित है ऐसे श्री वर्द्धमान स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।

* पंचगुरु भक्ति *

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यत्तथा च साधुभ्यः ।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ।।

सकल संसार के वन्दन करने योगय ऐसे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

हे भगवन्त ! पंचगुरु भक्ति कायोत्सर्ग करने की आलोचना पूर्वक मैं इच्छा करता हूं। अनन्त-चतुष्टय से युक्त, अष्ट महा प्रातिहार्यों से युक्त अरिहंत

भगवंत को, अष्टगुणों से परिपूर्ण और ऊर्ध्वलोक में स्थित सिद्धों को, अष्ट प्रवचन मार्ग से युक्त आचार्यों को आचारादिक के शुद्ध ज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्यायों को और सम्यक् दर्शन ज्ञान, चारित्र रूप तीन रत्न के गुणों को पालने में तत्पर ऐसे सर्वसाधुओं को मैं भाव भक्ति से नमस्कार करता हूँ। जिस कारण से मुझे दुःख-क्षय, कर्म-क्षय, बोधिलाभ, अच्छी गति में गमन, समाधिमरण और जिन गुणों की प्राप्ति हो।

(णमोकार मन्त्र का जाप्य नौ बार करना)

* सिद्ध भक्ति *

मैं सिद्ध भक्ति धारण करने के लिये दिवस संबंधी कृत कर्मों की आलोचना करता हूँ। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र आठ कर्म रहित, आठ गुण सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध (सुख), अमूर्तिकत्व (सूक्ष्मत्व), अगुरुलघुत्व और अवगाहनत्व सहित लोक के अन्त भाग में स्वभाव अर्थ पर्याय और स्वभाव व्यंजनपर्याय से विराजमान, उत्तम अनंत गुणों से युक्त सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए, ऐसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बंधी समस्त सिद्धों को मैं भाव भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। सिद्ध-भक्ति से मेरे दुःखों का नाश, सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र की प्राप्ति, सुगति का गमन, समाधिमरण आधैर जिन गुणों की प्राप्ति हो। इस भावना की सिद्धि के लिये मैं सिद्ध भक्ति करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* अरिहन्त भक्ति *

हे भगवान ! मैं चौबीस तीर्थङ्करों की भक्ति करने के लिये दिवस सम्बन्धी (रात्रि सम्बन्धी) कृत कर्मों की आलोचना करता हूँ। आप पंच महाकल्याणकों से सुशोभित, अष्ट महाप्रातिहार्य सहित, चौंतीस अतिशय युक्त अनन्तचतुष्टय और रत्नत्रय के धारक व केवल ज्ञानरूपी अभ्यन्तर लक्ष्मी एवं समवशरणादि बहिरङ्ग लक्ष्मी के स्वामी हो। हे प्रभो ! आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

शतइन्द्र, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, छत्रधारी राजाओं एवं ऋषिगण, मुनिगण, यतिगण और अनगारों से सेवित सैकड़ों और हजारों स्तुतियों से स्तुत्य ऐसे

वृषभादि वीर पर्यंत सर्व मंगलकारक महापुरुषों को मैं भाव भक्ति पूर्वक त्रिकाल वन्दना और नमस्कार करता हूँ। जिससे मेरे दु:खों का क्षय, बोधिलाभ, शुभगति में गमन, समाधिमरण और जिन गुणों की प्राप्ति हो।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* आचार्य भक्ति *

जो द्वादशांग सूत्र रूपी समुद्र के पारगामी व ज्ञान ध्यान और तप में लवलीन, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित व जितेन्द्रिय शुद्ध चारित्र व छत्तीस गुणों से युक्त, पन्चाचार को स्वयं पालने वाले व शिष्यों को आचरण कराने वाले स्वसमय और परसमय में पारंगत मेरु के समान निश्चल पृथ्वी के समान सहनशील, समुद्र के समान गंभीर निर्मल बुद्धि वाले, निर्दोष षट् आवश्यकों को पालने वाले, सिंह के समान निर्भय सौम्यमूर्ति, आकाश के समान निर्लेप, देश, कुल और जाति से शुद्ध, संघ और दीक्षा, शिक्षा व प्रायश्चित देने में कुशल हैं ऐसे आचार्यों को मैं भक्ति-भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* उपाध्याय भक्ति *

पच्चीस गुणयुक्त, मोक्ष मार्ग में स्थित और मोक्ष के इच्छुक मुनीश्वरों को उपदेश देने में प्रवीण, व्रतों की रक्षा करने में तत्पर ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी का मैं भक्तिभाव पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* साधु भक्ति *

जो व्रत तप व ध्यानरूपी अग्नि से कर्मों को नाश करने में प्रवीण, षट् आवश्यक कर्मों में सावधान, अनन्तज्ञानादि रूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करने वाले मन को जीतने वाले, शीलरूपी कवच को धारण करने वाले, गुण रूपी शस्त्र सहित, सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, मृग के समान सरल और निरीह गोचरी करने वाले, पवन के समान निःसंग, सूर्य के समान

तेजस्वी, चन्द्र के समान निर्मल, सागर के समान गंभीर, सुमेरु के समान अकम्प, अडोल, आकाश के समान निरालम्बी, निर्लेप, परीषह और उपसर्ग को सहन करने वाले, अट्ठाईस, मूल गुणों का निरतीचार पालन करने वाले, मोक्ष के साधक भावलिंगी व तपोनिधि मुनीश्वरों का मैं भाव भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* चैत्य भक्ति *

मैं चैत्य-भक्ति एवम् कायोत्सर्ग करने की इच्छा पूर्वक आलोचना करता हूँ। अधोलोक में (सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम जिन मन्दिर) तिर्सक् (मध्य) लोक में (चार सौ अठावन) और ऊर्ध्वलोक में (चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस) अकृत्रिम जिन चैत्यालयों में नौ अरब पच्चीस करोड़ तिरेपन लाख सत्ताईस हजार नौ सौ अड़तालीस अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं को एवम् व्यंतर, ज्यातिष देवों के भवनों में स्थित असंख्यात चैत्यालय तथा असंख्यात जिन प्रतिमाओं को मैं भक्ति भाव से नमस्कार करता हूँ। जिससे हमारे दु:ख का क्षय, कर्म का क्षय, बोधिलाभ, शुभगति में गमन, समाधिमरण और जिन गुणों की प्राप्ति हो।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* निर्वाण भक्ति *

अष्टापद (कैलाश), सम्मेदाचल, गिरनार, चम्पापुर, पावापुर आदि तीर्थों से एवं विदेह क्षेत्र तथा समस्त कर्म भूमि से जितने जीव कर्म मल रहित सिद्ध बुद्ध एवं निर्मल हो गये हैं उन सर्व सिद्धों को क्षेत्रों व तीर्थक्षेत्रों को भाव भक्ति से मैं नमस्कार करता हूँ।

।। श्रुत-भक्ति - (जिनवाणी भक्ति) ।।

अथेष्ट प्रार्थना :ह्रह्र

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नम:।

अब इष्ट प्रार्थना के लिये मैं प्रथमानुयोग को, करणानुयोग को चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग को नमस्कार करता हूँ।

एक सौ बारह करोड़, तिरासी लाख, अट्ठावन हजार पाँच पद युक्त द्वादशांगवाणी को एवं चौदह-प्रकीर्णक के आठ करोड़, एक लाख, आठ हजार, एक सौ पिचहत्तर अक्षरों को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावश्रुत और अर्थ पदों के कर्त्ता श्री तीर्थंकर देव द्वारा भाषित एवं तीर्थंकर देव के निमित्त से अनन्तर भावश्रुत रूप पर्याय से परिणित श्री इन्द्रभूति गौतम गणधर ने बारह अंग और चौदह पूर्व रूप ग्रन्थों की एक ही मुहूर्त में क्रमशः द्रव्यश्रुत की रचना की है उनको मैं भक्ति भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

।। पाक्षिक श्रावक किसको कहते हैं ।।

धर्म का पक्ष रखने वाले सच्चे देव, शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरु की शरण प्राप्त कर अन्य कुदेवादिक की श्रद्धान को छोड़कर अष्टमूलगुण धारण करता है वही पाक्षिक श्रावक पद को पाता है। वह जीव प्रथम श्री जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रतिपादित सात तत्वों का यथार्थ श्रद्धान हेयोपादेय पूर्वक करता है क्योंकि यह धर्म का मूल सिद्धान्त है, बिना इसके धर्म पथ का अनुयायी नहीं हो सकता।

।। सात तत्वों का संक्षेप में विचार ।।

मैं एक अखंड निराकुल अविनाशी चेतन द्रव्य हूँ, राग द्वेष रूपी विभाव परिणाम अचेतन हैं। हिंसादि वा अहिंसादि-विकल्प जो मेरी अवस्था में उठते है वे सब पाप पुण्य रूप आस्रव हैं। वे दोनों धारायें आत्मीय स्वभाव से भिन्न अशुचिरुप होने से हेय हैं, क्योंकि वे संसार रूप हैं, उनका मैं कर्त्ता हर्त्ता और भोक्ता कदापि नहीं हूँ। रागादि से मलिन जो मेरा परिणाम है वह बन्धतत्त्व है और रागादि से भिन्न करने का शस्त्र (भेदज्ञान) संवर निर्जरा तत्त्व है इसलिये वे तत्व मुझे उपादेय हैं। रागादि से भिन्न एक मात्र शुद्ध विज्ञान धन चेतना में (शुद्धोपयोग में) रमण करना मोक्ष तत्व है जो कि मेरा स्वरूप है। ऐसे सात तत्वों को हेयोपादेयरूप सम्यक् प्रकार से समझ कर आत्मा का श्रद्धान करना, उनको जानना और रागादि को छोड़कर वीतराग भाव में आगे बढ़ना रत्नत्रय रूप मोक्ष-मार्ग है और रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्ष है।।

* षट् आवश्यक *

मैं पाक्षिक श्रावक के षट् आवश्यक, 1. देव पूजा, 2. गुरु उपासना, 3. स्वाध्याय, 4. संयम पालन, 5. तप (यथा शक्ति) धारण और 6. सुपात्र को दान ये षट् कर्म को नियमित रूप से करता हूँ।

इन कर्त्तव्यों के साथ धार्मिक नीति और व्यवहार नीति का पालन करता हूँ। सबसे प्रथम मैं पच्चीस दोष (आठ मद, आठ शंकादि दोष, छह अनायतन और तीन मूढ़ता) रहित शुद्ध सम्यक्दर्शन (निर्दोष) को धारण करता हूँ।

हे भगवन् ! मैंने मूलगुणों के तीसरे भेद मधुत्याग में हरे (गीले) पुष्प ऐसे फूल जिनमें बहुत से त्रस जीव आते-जाते फिरते, दौड़ते रहते हैं तथा फूल मात्र साधारण वनस्पति है। प्रत्येक फूल में अनन्तानत बादर निगोदिया जीव होते हैं देखो गोमटसार, रत्नकरण्ड (सूत्र 119) सेवन किये हों और करने की अनुमति दी हो तो इस सम्बन्धी जो अतिचार अनाचार आज दिन पर्यन्त लगे हों उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन् ! मैंने मूलगुणों के छठे भेद जलगालन नामक गुण के पालन करने में जल छानने के बाद दो मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर भी उस पानी का उपयोग किया हो और उसकी जिवाणी को जहां से पानी लाया गया वहां नहीं पहुंचाया हो (या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, की योग्यतानुसार न देखा हो) पुराने मलिन, महीन और सछिद्र वस्त्र से प्रमाद, अज्ञान, लोभवश जल छाना हो तो इस सम्बंधी कृतकारित, अनुमोदना से आज दिन पर्यन्त कोई दोष लगे हों उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन् ! मैंने मूलगुणों के सातवें भेद जिन दर्शनों के पालन करने में प्रमाद किया हो, अविनय किया हो या मन, वचन काय की अशुद्धि से सरागी देवों की आराधना संसार, शरीर, भोग रूप कार्य से किया हो तो इस सम्बंधी जो अतिचार अनाचार आज दिन पर्यन्त लगे हों, मैं उनका प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन् ! मैंने मूलगुणों के आठवें भेद जीवदया के पालन करने में प्रमाद और अज्ञान किया हो, बिना प्रयोजन ही जीवों को सताया हो, दुःख दिया हो, अंगोपांग छेदा हो इत्यादि जो अतिचार इस सम्बन्धी आज दिन पर्यन्त लगे हों उनका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

* निर्ग्रन्थ पद की भावना *

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ पद की इच्छा करता हूँ, जब तक मेरा संसार से सम्बन्ध है तब तक भव-भव में त्रिजगत् पूज्य और मंगल लोकोत्तम शरणभूत निर्ग्रन्थ पद की भावना करता हूँ, धन्य है वह दिन और वह घड़ी कि जिस दिन मैं भी निर्ग्रन्थपद धारण करके ध्यान, ज्ञान और तप में लवलीन होऊँगा, जंगल में वास करूँगा और आत्मिक गुणों में रमणता करूँगा।

धन्य हो यह निर्ग्रन्थ पद ! बाह्य और अभ्यंतर समस्त परिग्रह रहित अनुपम केवलज्ञान का उत्पादक, रत्नत्रय का साधक, सर्व सावद्य रहित, परम उदासीनता का कारणभूत, परम विशुद्ध, माया मिथ्यात्व निदान शल्यरहित, सिद्धि का मार्ग, उपशम या क्षपक श्रेणी के चढ़ने का कारण, क्षमा का भूषण, मुक्ति का बहिरंग सहकारी कारण, संसार परिभ्रमण का नाशक, निर्वाण का निमित्त, सर्व दुःखों का नाश करने वाला और सर्वोत्कृष्ट मार्ग है ऐसे निर्ग्रन्थपद को मैं भाव भक्तिपूर्वक श्रद्धान करता हूँ, अनन्य भावना से प्रेम करता हूँ विश्वास करता हूँ। पवित्र भाव से धारण करना चाहता हूँ, इस निर्ग्रन्थ पद को तीर्थङ्कर, गणधरादि महापुरुषों ने धारण किया इसलिये इसके समान उत्कृष्ट और दूसरा पद न तो वर्तमान में है, न भूत में हुआ है और न भविष्य में होगा। सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र एवं आगम द्वारा इस निर्ग्रन्थ पद का आश्रय लेकर ही जीव आत्मसिद्धि रूप निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। अर्थात् तीन लोक के सर्व पदार्थों का ज्ञाता स्वभावी परमात्मा हो जाता है।

मैं इस निर्ग्रन्थ पद को धारण करने का इच्छुक हूँ, संयम धारण करने के लिये आराधना करता हूँ, विषय कषायों से उदासीन होता हूँ, विरक्त होता हूँ, मैं उपाधि रूप क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, काम, भय, प्रपंच, असत्य, मात्सर्य, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र, विषय भोग, समस्त व्यामोह, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पिशाच का (प्रतिक्रमण के समय तक) त्याग करता हूँ और सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करता हूँ। यदि मैंने साक्षात् मोक्ष के बहिरंग कारणभूत निर्ग्रन्थ पद की अविनय एवं जुगुप्सा मन, वचन, काय, कृतकारित, अनुमोदना से की हो तो वे सब भाव मेरे मिथ्या हों, मिथ्या हों, मिथ्या हों।

* वीर भक्ति *

हे भगवन् ! मैं वीर प्रभु की भक्ति करने का इच्छुक हूँ और इसके लिए मैं इस विनाशीक शरीर से ममत्व भाव को छोड़ने का अभ्यास करता हूँ जो मैंने दिन में (या रात्रि में) आवश्यक क्रियाओं को करने में आलस्य किया हो। व्रतों को भंग किया हो, शिथिलता धारण की हो, मन में ग्लानि उत्पन्न की हो, लज्जा से, शीघ्रता से, दुष्टता से, अज्ञान से, मान से, प्रमाद से, अविनय से, भय तथा आशा से, राग-द्वेष-मोह से कुत्सित परिणामों से, गुप्त रूप से, माया से, आचरण में अतिचार, अनाचार, आभोग, अनाभोग रूप, कायिक, वाचनिक और मानसिक दुराचरण स्वयं किया हो, कराया हो, बीभत्सता से भाषण किया हो, स्वप्नादि में दोष लगाया हो, अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सूत्र जिनागम एवं प्रतिमाओं की विराधना की हो तो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो, मिथ्या हो, मिथ्या हो।

हे महावीर स्वामी ! मैं आपका चिंतवन करता हूँ क्योंकि आप राग, द्वेष, मोह, परिग्रह, शल्य (माया, मिथ्यात्व, निदान) और कषाय से रहित हो। आपने साम्यभाव धारणकर समस्त कर्मों का नाश किया है एवं शुद्धोपयोग रूप केवलज्ञान को धारणकर जन्ममरण से निर्भय हो गये हो। आपके तप ही प्रधान योग है। इसलिये आप शील के सागर, अप्रमेय, महान, मुनि महर्षि और ज्ञानी जनों से पूज्य, लोक शिरोमणि, सर्वज्ञ सर्वमलरहित सिद्ध हो, बुद्ध हो, शुद्ध हो, वीतराग हो, रत्नत्रय के स्वामी हो और अनन्त शुद्ध गुणों के पुंज हो। हे प्रभो ! आप मेरा मंगल करें, मंगल करें, मंगल करें।

जो प्रत्येक समय में सम्पूर्ण चेतन-अचेतन द्रव्य तथा उनकी त्रिकालवर्ती गुण पर्यायों को युगपत् जानने के कारण सर्वज्ञ कहे जाते हैं उन्हीं सर्वज्ञ, जिनेश्वर, श्री महावीर प्रभु के लिये मेरा नमस्कार हो।

हे वीर प्रभो ! आपकी समस्त इन्द्र पूजा करते हैं, विज्ञ गणधरादिक आपकी सेवा करते हैं और आपने समस्त कर्मों को नष्ट कर दिया है, इसलिये हे वीर प्रभु ! आपको मेरा नमस्कार हो, धर्मतीर्थ आपका इस कलिकाल में भी

हजारों वर्ष तक चलता रहेगा। आप घोर तप के धारण करने वाले परम योगीश्वर हो आप में श्री, धृति, कान्ति, कीर्ति आदि सर्व गुणों का वास है। अतएव आप कल्याण के मार्ग को प्रकाशित करने वाले हो। इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

* चैतन्य ज्ञान *

जो शुद्ध सत्ता स्वरूप वस्तु है जिसका स्वभाव चेतना स्वरूप है, निज अनुभव रूप क्रिया से प्रकाशमान है और जिन शक्ति से अन्य सब जीवाजीव चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्र काल भाव सम्बन्धी सर्व विशेषणों (सामान्य विशेषात्मक) सहित एक समय में युगपत् जानने वाला जो द्रव्यकर्म, भावकर्म नौकर्म रहित शुद्ध चिदानन्द आत्म द्रव्य मेरे देह में शक्तिरूप विराजमान है, उसको मैं भाव भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

जो मनुष्य संयम को धारण कर और ध्यान में लीन होकर वीर प्रभु को नमस्कार करता है वह समस्त शोक को दूर कर संसार से पार हो जाता है।

सामायिक चारित्र को सर्व तीर्थङ्करों ने स्वयं पालन किया है तथा पाँचों (सामायिक, छेदोपस्थना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात) चारित्रों को पालन करने का उन्होंने अपने सभी शिष्यों को उपदेश भी दिया है। मैं उस पंचम यथाख्यात चारित्र को भक्ति भाव पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

त्याग, व्रत, संयम, नियम, यम, शील, समिति, गुप्ति, तप, भावना, परीषहजय और उपसर्ग-विजय तथा दश धर्म ये व्यवहार चारित्र के भेद हैं और वह चारित्र मोक्ष का साधन है। वह समस्त पाप और संसार का नाश करने वाला होने से मैं उसको श्रद्धान पूर्वक भाव भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

* धर्म की महिमा *

धर्म समस्त मंगलों में प्रधान मंगल है। अहिंसा, संयम और तप धर्म के अङ्ग है। जो मनुष्य धर्म को पवित्र हृदय से धारण करता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म का मूल स्वदया है, धर्म को विद्वान, गणधरादि मुनीश्वर धारण करते हैं। धर्म से सर्व सुखों की प्राप्ति और कल्याण होता है। धर्म धारण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म ही जगत का बन्धु है। इसलिये मैं अपने चित्त (चैतन्यभाव) में धर्म को धारण करता हूँ। हे धर्म ! तुझे मैं भक्ति भाव से नमस्कार करता हूँ।

समस्त ज्ञेय पदार्थों के ज्ञाता, 1008 (एक हजार आठ) शुभ लक्षणों से सुशोभित, संसार के बन्धन को नाश करने वाले, करोड़ों सूर्य और चन्द्र से भी अधिक तेजस्वी, मुनीश्वर, नरेन्द्र और देवेन्द्र से पूज्य ऐसे ऋषभादि चौबीस तीर्थङ्करों को मैं भक्ति भाव पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

* समुदाय भक्ति *

केवली, अरिहंत, तीर्थंकर, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय-ज्ञानी, श्रुतकेवली, शास्त्रज्ञानी, पवित्रतप के धारक यतीश्वर ऋद्धिधारी गुणवान-महर्षि, सिद्धांतज्ञानी, गुप्ति-धारक समितिपालक, गणधरादि महामुनीश्वरों, सम्यक् दृष्टि, संयमी विनय करने योग्य ब्रह्मचारी ! आप मेरा कल्याण करो ! कल्याण करो ! कल्याण करो ! चारों प्रकार का संघ मेरा मंगल करो, शांति करो, पवित्र करो, मैं विशुद्धि भाव से मेरे कर्मों का नाश करने के लिये नमस्कार करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

* ईष्ट प्रार्थना *

हे परमेष्ठिन् ! मुझे सदा जैनागम का अभ्यास, जिनेन्द्रदेव की स्तुति और सज्जनों की संगति प्राप्त हो।

मैं सदा समीचीन चारित्र के धारण करने वाले महापुरुषों के गुण समूह का कीर्तन करता हूँ, पर के दोषों के प्रकट करने में मुझे सदा मौनव्रत का ही आलम्बन हो, मेरे वचन सब प्राणियों को प्रिय और हितकारक हो तथा भावना आत्मतत्व विषयक ही हो। हे जगत उद्धारक प्रभो ! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक उपरोक्त सामग्री प्राप्त हो। यह मेरी इष्ट प्रार्थना है।

हे जिनेन्द्र देव ! जब तक मुझे निर्वाण (मोक्ष) पद की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरण कमल मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे।

हे जिनेन्द्र देव ! मैंने अल्पज्ञता के कारण अक्षर, पद, अर्थ और मात्राओं से हीन जो कुछ भी अशुद्ध उच्चारण किया हो उसे क्षमा करें और मेरे दु:खों का नाश करें।

हे जिनेन्द्र देव ! मेरे दु:खों का नाश हो, कर्मों का नाश हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति गमन हो, सम्यक्दर्शन की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और जिनराज के गुणों की प्राप्ति हो ऐसी मेरी प्रार्थना है।

* समापन कायोत्सर्ग *

हे भगवन् ! अन्त में मैं प्रतिक्रमण में लगे हुए दोषों की आलोचना करता हूँ। प्रतिक्रमण करने में मुझसे देश, आसन, स्थान, काल, मुद्रा, कायोत्सर्ग श्वासोच्छवास और नमस्कारादि तथा छह आवश्यकों से सम्बन्ध रखने वाले मानसिक, वाचनिक, कायिक एवं कृतकारित, अनुमोदित दोष हुए हों वे सब निरर्थक हो।

आज के प्रतिक्रमण करने में श्वासोच्छवास से, नेत्रों की टंकार से, खांसने से, छींकने से, जम्हाई लेने से सूक्ष्म और स्थूल अङ्गों के हिलाने से और दृष्टि दोष आदि समस्त क्रियाओं से सूत्र पाठ आदि क्रियाओं को विस्मरण किया हो, अविनय की हो, प्रमाद अज्ञान से अन्यथा प्ररूपणा की हो तो मैं इस प्रतिक्रमण के समय वीर भगवान की भक्तिरूप कायोत्सर्ग धारण करता हूँ।

हे भगवन् ! मैं ईर्यापथ में लगे हुए दोषों को आलोचना करता हूँ। पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओं में और विदिशाओं में विहार करते हुए युगान्तर से प्रमादजन्य पद पर प्राणी रूप जीवों की सत्ता के विषय में जो उपघात दोष मैंने किया हो, अनुमोदना की हो, वे सब मेरे दुष्कृत मिथ्या हों।

हे भगवन् ! मेरी ली हुई प्रतिक्रमण प्रतिज्ञा के प्रतिकूल कोई दोष, जान से, अनजान से, प्रमादजन्य मन, वचन, काय कृत, कारित, अनुमोदना से हो गया हो एवं मेरा उपयोग आत्म ध्यान से छूटकर सांसारिक संकल्प विकल्प रूप उलझनों

में चला गया हो और उससे प्रतिक्रमण में दूषण आया हो तो इनकी निवृत्ति के लिये मैं नौ बार णमोकार मन्त्र का कायोत्सर्ग करके प्रतिक्रमण पूर्ण करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करना)

सामायिक के अंत की क्षमापना

सम्पूर्ण विधि कर वीनऊं, इस परम सामायिक पाठ में।
अज्ञानवश शास्त्रोक्त विधि तैं, चूक कीनी पाठ में।।
सो होहु पूर्ण समस्त विधिवत, तुम चरण की शरण में।
वन्दों तुम्हें करजोरि के, उद्धार जामनमरण तैं।।1।।

आह्वानन स्थापन तथा सन्निधिकरण विधान जी।
सामायिक आराधना यथाविधि जानों नहीं गुणखान जी।।
जो दोष लागे सो नशो सब, तुम चरण की शरण में।
वन्दों तुम्हें करजोरि कर, उद्धार जामनमरण तैं।।2।।

तुम रहित आवागमन आह्वानन कियो निजभाव में।
विधियथाक्रम निजशक्तिसम, सामायिक कियो अतिचाव में।।
करहूँ विसर्जन भाव ही में, तुम चरण की शरण तें।
वन्दौं तुम्हें करजोरि के, उद्धार जामन मरण तैं।।3।।

।। दोहा ।।

तीन भुवन तिहुंकाल में, तुमसा देव न और।
सुखकारक संकटहरण, नमहुँ युगल कर जोर।।

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

।। इति पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण समाप्तम्।।

सामायिक पाठ (भाषा)

1. प्रतिक्रमण कर्म

काल अनंत भ्रम्यो जग में सहिये दुख भारी।
जन्म मरण नित किये पाप को है अधिकारी।।
कोटि भवांतर माहिं मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक।।1।।
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योग की गुप्ति बिना लभ।।
आप समीप हजूर माहिं मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूँ सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब।।2।।
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी।
दुःख सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी।।
बिना प्रयोजन एकेंद्रिय वि ति चउ पंचेंद्रिय।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय।।3।।
आपस में इक ठौर थापकरि जे दुख दीने।
पेलि दिये पग तलैं दाबि करि प्रान हरीने।।
आप जगत के जीव जिते तिन सब के नायक।
अरज कयँ मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक।।4।।
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय।।
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षट्कर्म माहिं विधि।।5।।

(नो बार णमोकार मंत्र बोलकर कायोत्सर्ग धारण करें।)

2. द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे।
तिन को जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे।।
सो सब झूठो होउ जगत पति के परसादै।
जा प्रसादतै मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै।।6।।

मैं पापी निर्लज्ज दया करि हीन महाशठ।
किये पाप अघ ढेर पाप मति होय चित्त दुठ।।
निंदूँ हूँ मैं बार बार निज जिय को गरहूँ।
सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूँ।।7।।

दुर्लभ है नर जन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत संगति संजोग धर्म जिन श्रद्धा धारी।।
जिन वचनामृत धार समावतैं जिनवानी।
तोहू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी।।8।।

इन्द्रिय लंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करै तिसि विधि हिंसक व्है अब।।
गमना गमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निंदूँ अब मन वच तोले।।9।।

आलोचन विधि थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुम तैं जिन मेरे।।
बार बार इस भाँति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिक तें भये निंदि ये जे भयभीता।।10।।

***

आलोचना पाठ

दोहा- वंदो पाँचों परमगुरु, चौबीसों जिनराज ।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ।।1 ।।

सखी छंद

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृति काजा, तुम सरन लही जिनराजा ।।2 ।।

इक वे ते चउ इंद्री वा, मन रहित सहित जे जीवा ।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ।।3 ।।

समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ ।
कृत कारित मोदन करिकैं क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ।।4 ।।

शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदन तैं ।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ।।5 ।।

विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ।।6 ।।

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी ।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ।।7 ।।

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सों दृग जोरी ।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ।।8 ।।

सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय सेवन को ।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ।।9 ।।

फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित्त चाये ।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुःखकारे ।।10 ।।

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निश-दिन भुंजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ।।11 ।।

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ।।12 ।।

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि तिवेद संयोग ।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ।।13 ।।

निद्रा वश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई ।
फिर जागि विषय वन धायो, नाना विध विषफल खायो ।।14 ।।

आहार विहार नीहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाइ ।।15 ।।

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो ।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है ।।16 ।।

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी ।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञान विषैं सब पइये ।।17 ।।

हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन राशि विराधी ।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ।।18 ।।

पृथिवी बहु खोद कराई महलादिक जागा चिनाई ।
पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यों, पंखातैं पवन विलोल्यो ।।19 ।।

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी ।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ।।20 ।।

हा हा परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई ।
तामध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये ।।21 ।।

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागां बुहारी चींटी आदिक जीव विदारी।।22।।

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।23।।

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।24।।

अन्नादिक शोध कराई, तातें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया।।25।।

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी।।26।।

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तैं कहिय न जाई।।27।।

ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुःख पावै, वचतैं कैसे करि गावै।।28।।

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।।29।।

इक गांव पती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी।।30।।

द्रौपदि को चीर बढ़ाओ, सीता-प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी।।31।।

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोष-रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी।।32।।

इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज पद दीजे।।33।।

(दोहा)

दोष-रहित जिनदेवजी, निज-पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ें, आनंद मंगल होय।।
अनुभव माणिक पारखी, जौहरि आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द।।

3. तृतीय सामायिक भाव कर्म

सब जीवन में मेरे समता भाव जग्यो है।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है।।
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छाँड़ि करिहूँ सामायिक।
संजम मो कब शुद्ध होय भाव बधायक।।11।।
पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति।
पंचहि थावर माहिं तथा त्रस जीव बसैं जित।।
बेइंद्रिय तिय चउ पंचेद्रिय माँहि जीव सब।
तिनतें क्षमा कराऊँ मुझ पर क्षमा करो अब।।12।।
इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं समगण।।
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी।।13।।
मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो।
और सबै सम भिन्न जानि ममता रस भीनो।।
माता पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्‌यो गह।।14।।

मैं अनादि जग जाल माँहि फँसि रूप न जाण्यो।
एकेन्द्रिय दे आदि जंतु को प्राण हराण्यो।।
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव-भव को अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी।।15।।

4. चतुर्थ स्तवन कर्म

नमो ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्म को।
सम्भव भव दुख हरण करण अभिनन्द शर्म को।।
सुमति सुमति दातार तार भव सिंधु पार कर।
पद्म प्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर।।16।।
श्री सुपार्श्व कृत पाश नाश भव जास शुद्ध कर।
श्री चन्द्रप्रभ चन्द्र काति सम देह कांतिधर।।
पुष्पदन्त दमि दोष कोष भवि पोष रोषहर।
शीतल शीतल करण हरण भवताप दोष कर।।17।।
श्रेय रूप जिन श्रेय ध्येय नित सेय भव्य जन।
वासुपूज्य शत पूज्य वासवादिक भव भय हन।।
विमल विमलमति देन अन्तगत है अनन्त जिन।
धर्म शर्म शिवकरण शान्तिजिन शान्ति विधायिन।।18।।
कुंथु कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जाल हर।
मल्लि मल्ल सम मोह मल्ल मारन प्रचार धर।।
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुर संघहिं नमिजिन।
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञानधन।।19।।
पार्श्व नाथ जिन पार्श्व उपल सम मोक्ष रमापति।
वर्द्धमान जिन नमूं नमूं भवदु:ख कर्मकृत।।

या विधि मैं जिन संघ रूप चउवीस संख्यधर।
स्तवूं नमूं हूँ बार-बार बन्दूँ शिव सुखकर।।20।।

5. पंचम वंदना कर्म

बन्दूँ मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति।
वर्द्धमान अतिवीर बन्दि हूँ मन वच तन कृत।।
त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति बन्दूँ।
बंदौं नित प्रति कनक रूप तनु पापनिकंदू।।21।।
सिद्धारथ नृपनंद द्वंद्व, दुख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन।।
कुण्डलपुर करि जन्म जगत जिय आनंद कारन।
वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुख टारन।।22।।
सप्त हस्त तनु तुङ्गभंगकृत जन्म मरण भय।
बाल ब्रह्म मय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय।
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीव घन।
आप बसे शिवमांहि ताहि बंदौ मन वच तन।।23।।
जाके वंदनथ की दोष दुख दूरहि जावै।
जाके वंदनथ की मुक्तिंतिय सन्मुख आवै।
जाके वंदनथ की वंद्य होवे सुरगन के।
ऐसे वीर जिनेश बन्दि हूँ क्रम युग तिनके।।24।।
सामायिक षट् कर्म मांहिं वंदन यह पंचम।
वंदो वीर जिनेन्द्र इंद्र शत वंद्य वंद्य मम।।

जन्म मरण भय हरो करो अब शान्ति शान्तिमय।
मैं अघ कोष सुपोष दोष को दोष विनाश।।25।।

6. छठा कायोत्सर्ग कर्म

कायोत्सर्ग विधान करूँ अंतिम सुखदाई।
कायत्यजनमय होय काय सबको दुखदाई।।
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर में।
जिनगृह वंदन करूँ हरूँ भवपाप तिमिर मैं।।26।।
शिरोनति मैं करूँ नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्तादिक क्रिया करूँ मन वच मद हरिकैं।।
तीन लोक जिन भवनमांहि जिन हैं जुअकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप माहीं बंदो जिम।।27।।
आठ कोड़ि परि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं।
च्यारि शतक-पर असी एक जिमंदिरजाणूं।।
व्यंतर ज्योतिष माहिं संख्य रहिते जिन मंदिर।
ते सब वंदन करूँ हरहु मम पाप संघकर।।28।।
सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री दायक।।
श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक।।29।।
जे भवि आतम-काज-करण उद्यम के धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी।।
राग रोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीज्यो अब।।30।।

***

निर्वाण काण्ड भाषा

दोहा - **वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिर नाय।**
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।1।।

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उर धार।।2।।

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेश्वर बीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस।।3।।

वरदत्तराय अरु इंद्र मुनिंद्र, सायरदत्त आदि गुणवृंद।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, वंदौं भावसहित कर जोड़ि।।4।।

श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
संबु-प्रद्युम्न कुमार द्वै-भाय, अनिरुद्ध आदि नमूँ तसु पाय।।5।।

रामचंद्र के सुत द्वै वीर, लाड-नरिंद आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरि वंदौं निरधार।।6।।

पांडव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजय-गिरि के सीस, भावसहित वंदौं निश-दीस।।7।।

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल।।8।।

राम हनू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणवे मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वंदौं धरि ध्यान।।9।।

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्घ प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस।।10।।

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास।।11।।

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जह छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, आठकोड़ि वंदौं भव पार।।12।।

बड़वानी बड़नगर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण, ते वंदौं भव-सागर तर्ण।।13।।

सुवरण-भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखर मँझार।
चेलना नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वंदौं नित तास।।14।।

फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पच्छिम दिशा द्रोणागिरि रूप।
गुरुदत्तादि-मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गये वंदौं नित तहाँ।।15।।

बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते वंदौं नित सुरत सँभार।।16।।

अचलापुर की दिशा ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय।।17।।

वंशस्थल वन के ढिग होय, पच्छिम दिशा कुंथुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम।।18।।

जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूँ जोरि जुग पान।।19।।

समवसरण श्री पार्श्व-जिनंद, रेसिंदीगिरि नयनानंद।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदौं नित धरम-जिहाज।।20।।

मथुरापुरी पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामी जी निर्वाण।
चरमकेवली पंचमकाल, ते वन्दौं नित दीनदयाल।।21।।

तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वंदन कीजै तहाँ।
मन-वच-काय सहित सिर नाय, वंदन करहिं भविक गुणगाय।।22।।

संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाण काण्ड गुणमाल।।23।।

इत्याशीर्वाद : ।

सामायिक पाठ (परमात्म बत्तीसी)

श्री अमितगति सूरि विरचित

(हिन्दी पद्यानुवाद - श्री रामचरित उपाध्याय)

नित देव ! मेरी आत्मा धारण करे इस नेम को।
मैत्री करे सब प्राणियों से, गुणी जनों से प्रेम को।।
उन पर दया करती रहे, जो दुख-ग्राह-ग्रहीत हैं।
उनसे उदासी सी रहे, जो धर्म से विपरीत हैं।।1।।

करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी, दीजिए मुझ में प्रभो।
तलवार को ज्यों म्यान से, करते विलग हैं हे विभो।।
गतदोष आत्मा शक्तिशाली हैं मिली मम अंग से।
उसको विलग उस भाँति करने के लिये ऋजु ढंग से।।2।।

हे नाथ ! मेरे चित्त में समता सदा भरपूर हो।
सम्पूर्ण ममता की कुमति मेरे हृदय से दूर हो।।
वन में, भवन में, दुःख में, सुख में नहीं कुछ भेद हो।
अरि-मित्र में, मिलने-बिछुड़ने में न हर्ष न खेद हो।।3।।

अतिशय घनी तम-राशि को दीपक हटाते हैं यथा।
दोनों कमल-पद आपके अज्ञान-तम हरते तथा।।
प्रतिबिम्ब सम स्थिर रूप वे मेरे हृदय में लीन हों।
मुनिनाथ ! कीलित तुल्य वे उर पर सदा आसीन हों।।4।।

यदि एक-इन्द्रिय आदि देही घूमते फिरते मही।
जिनदेव ! मेरी भूल से पीड़ित हुए होवें कहीं।।
टुकड़े हुए हों, मल गये हों, चोंट खाये हों कभी।
तो नाथ ! वे दुष्टाचरण मेरे बनें झूठे सभी।।5।।

सन्मुक्ति के सन्मार्ग से प्रतिकूल पथ मैंने लिया।
पञ्चेन्द्रियों चारों कषायों में स्वमन मैंने किया।।
इस हेतु शुद्ध चरित्र का जो लोप मुझसे हो गया।
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को हो प्राप्त प्रभु ! करिए दया।।6।।

चारों कषायों से, वचन, मन, काय से जो पाप है-
मुझसे हुआ , हे नाथ ! वह कारण हुआ भव-ताप है।।
अब मारता हूँ मैं उसे आलोचना-निन्दादि से।
ज्यों सकल विषको वैद्यवर है मारता मन्त्रादि से।।7।।

जिनदेव ! शुद्ध चारित्र का मुझसे अतिक्रम जो हुआ।
अज्ञान और प्रमाद से व्रत का व्यतिक्रम जो हुआ।।
अतिचार और अनाचार जो जो हुए मुझसे प्रभो !।
सबकी मलिनता मैटने को प्रतिक्रम करता विभो।।8।।

मन की विमलता नष्ट होने को अतिक्रम है कहा।
ओ शीलचर्या के विलंघन को व्यतिक्रम है कहा।।
हे नाथ ! विषयों में लिपटने को कहा अतिचार है।
आसक्त अतिशय विषय में रहना महाऽनाचार है।।9।।

यदि अर्थ मात्रा वाक्य में पद में पड़ी त्रुटि हो कहीं।
तो भूल से ही वह हुई, मैंने उसे जाना नहीं।।
जिनदेव वाणी ! तो क्षमा उसको तुरत कर दीजिये।
मेरे हृदय में देव ! केवलज्ञान को भर दीजिये।।10।।

हे देव ! तेरी वन्दना मैं कर रहा हूँ इसलिये।
चिन्तामणि प्रभू हो सभी वरदान देने के लिये।।

परिणाम-शुद्धि समाधि मुझमें बोधि का संचार हो।
हो प्राप्ति स्वात्मा की तथा शिवसौख्य की भवपार हो।।11।।

मुनिनायकों के वृन्द जिसको स्मरण करते हैं सदा।
जिसका सभी नर अमरपति भी स्तवन करते हैं सदा।
सच्छात्र वेद-पुराण जिसको सर्वदा हैं गा रहे।।
वह देव का भी देव बस मेरे हृदय में आ रहे ।।12।।

जो अन्तरहित सुबोध-दर्शन और सौख्यस्वरूप है।
जो सब विकारों से रहित, जिससे अलग भवकूप है।।
मिलता बिना न समाधि जो, परमात्म जिसका नाम है।
देवेश ! वह उर आ बसे मेरा खुला हृधाम है।।13।।

जो काट देता है जगत के दु:ख निर्मित जाल को।
जो देख लेता है जगत की भीतरी भी चाल को।।
योगी जिसे हैं देख सकते, अन्तरात्मा जो स्वयम्।
देवेश ! वह मेरे हृदय-पुर का निवासी हो स्वयम्।।14।।

कैवल्य के सनमार्ग को दिखला रहा है जो हमें।
जो जन्म के या मरण के पड़ता न दुख-सन्देह में।।
अशरीरी हो त्रैलोक्यदर्शी दूर है कुकलंक से।
देवेश ! वह आकर, लगे मेरे हृदय के अङ्ग से।।15।।

अपना लिया है निखिल तनुधारी-निबहने ही जिसे।
रागादि दोष-व्यूह भी छू तक नहीं सकता जिसे।।
जो ज्ञानमय है, नित्य है, सर्वेन्द्रियों से हीन है।
जिनदेव ! देवेश्वर वही मेरे हृदय में लीन है।।16।।

संसार की सब वस्तुओं में ज्ञान जिसका व्याप्त है।
जो कर्म-बन्धन हीन, बुद्ध, विशुद्ध सिद्धि प्राप्त है।।
जो ध्यान करने से मिटा देता सकल कुविकार को।
देवेश ! वह शोभित करे मेरे हृदय-आगार को।।17।।

तम-संघ जैसे सूर्य-किरणों को न छू सकता कहीं।
उस भाँति कर्म-कलंक दोषाकर जिसे छूता नहीं।।
जो है निरंजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है, एक है।
उस आप्त प्रभु की शरण में हूँ प्राप्त जो कि अनेक है।।18।।

वह दिवसनायक लोक का जिसमें कभी रहता नहीं।
त्रैलोक्य भाषक-ज्ञान-रवि पर है वहां रहता सही।।
जो देव स्वात्मा में सदा स्थिर-रुपता को प्राप्त है।
मैं हूँ उसी की शरण में, जो देववर है, आप्त है।।19।।

अवलोकने पर ज्ञान में जिसके सकल संसार है।
है स्पष्ट दिखता, एक से है दूसरा मिलकर नहीं।।
जो शुद्ध, शिव है, शांत भी है, नित्यता को प्राप्त है।
उसकी शरण को प्राप्त हूँ, जो देववर है आप्त है।।20।।

वृक्षावली जैसे अनल की लपट से रहती नहीं।
त्यों शोक, मन्मथ, मान को रहने दिया जिसने नहीं।।
भय, मोह, नींद, विषाद, चिन्ता भी न जिसको व्याप्त है।
उसकी शरण में हूँ गिरा, जो देववर है आप्त है।।21।।

विधिवत् शुभासन घासका या भूमिका बनता नहीं।
चौकी, शिला को ही सुभासन मानती बुधता नहीं।।

जिससे कषायें-इन्द्रियाँ खटपट मचाती हैं नहीं।
आसन सुधी जन के लिये है आतमा निर्मल वही।।22।।

हे भद्र ! आसन, लोकपूजा, संघकी संगति तथा।
ये सब समाधी के न साधन, वास्तविक में है प्रथा।।
सम्पूर्ण बाहर-वासना को इसलिये तू छोड़ दे।
अध्यात्म में तू हर घड़ी होकर निरत रति जोड़ दे।।23।।

जो बाहरी हैं वस्तुएं, हैं नहीं मेरी कहीं।
उस भांति हो सकता कहीं उनका कभी मैं भी नहीं।।
यों समझ बाह्याडम्बरों को छोड़ निश्चित रूप से।
हे भद्र ! हो जा स्वस्थ तू बच जायेगा भवकूप से।।24।।

निज को निजात्मा-मध्य में ही सम्यग्अवलोकन करे।
तू दर्शन-प्रज्ञानमय है, शुद्ध से भी है परे।।
एकाग्र जिसका चित्त है, तू सत्य इसको मानना।
चाहे कहीं भी हो, समाधी-प्राप्त उसको जानना।।25।।

मेरी अकेली आत्मा परिवर्तनों से हीन है।
अतिशय विनिर्मल है सदा सद्ज्ञान में ही लीन है।।
जो अन्य सब हैं वस्तुएं वे ऊपरी ही हैं सभी।
निज कर्म से उत्पन्न है अविनाशिता क्यों हो कभी।।26।।

है एकता जब देह के भी साथ में जिसकी नहीं।
पुत्रादिकों के साथ उसका ऐक्य फिर क्यों हो कहीं।।
जब अंग-भर से मनुज के चमड़ा अलग हो जायगा।
तो रोंगटों का छिद्रगण कैसे नहीं खो जायगा।।27।।

संसाररूपी गहन में है जीव बहु दुख भोगता।
वह बाहरी सब वस्तुओं के साथ कर संयोगता।।
यदि मुक्ति की है चाह तो फिर जीवगण ! सुन लीजिये।
मन से, वचन से-काय से उसको अलग कर दीजिये।।28।।

देही ! विकल्पित जाल को तू दूर कर दे शीघ्र ही।
संसार-वन में डोलने का मुख्य कारण है यही ।।
तू सर्वदा सबसे अलग निज आत्मा को देखना।
परमातमा के तत्व में तू लीन निज को लेखना।।29।।

पहले समय में आत्मा ने कर्म हैं जैसे किए।
वैसे शुभाशुभ फल यहां पर इस समय उसने लिए।।
यदि दूसरे के कर्म का फल जीव को हो जाय तो।
हे जीवगण ! फिर सफलता निज कर्म की खो जाय तो।।30।।

अपने उपार्जित कर्म-फल को जीव पाते हैं सभी।
उसके सिवा कोई किसी को कुछ नहीं देता कभी।।
ऐसा समझना चाहिये एकाग्र मन होकर सदा।
'दाता अपर है भोगका' इस बुद्धि को खोकर सदा।।31।।

सबसे अलग परमातमा है, 'अमितगति' से वन्द्य है।
हे जीवगण ! वह सर्वदा सब भाँति ही अनवद्य है।।
मन से उसी परमातमा को ध्यान में जो लाएगा।
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन मुक्ति पद को पाएगा।।32।।

चौपाई **पढ़कर इन द्वात्रिंश पद्य को, लखता जो परात्मवन्द्य को।**
वह अनन्यमन हो जाता है, मोक्ष निकेतन को पाता है।।33।।

***

कल्याणालोचना

गाथा - **परमप्पइ वद्ढमई परमेट्ठीणं करोमिणवकारं।**
सग पर सिद्धिणिमित्तं कल्लाणालोयणा वोच्छे।।1।।

(1) अनन्त ज्ञान के धारक श्री अरहन्त भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ तथा आत्मा की सिद्धी के लिये एवं जीवों के कल्याणार्थ कल्याण आलोचना करता हूँ।

(2) रे जीव ! मिथ्यात्व कर्म की तीव्र प्रकृतियों के उदय से इस अनन्त जन्म-मरण रूपी संसार में तूने अनन्त बार परिभ्रमण किया परन्तु अब तक तुझे रत्नत्रय की प्राप्ति कभी नहीं हुई।

(3) इस संसार में परिभ्रमण करते हुये तूने जिनधर्म का आराधन कभी नहीं किया और उसी जिनधर्म के बिना इस संसार में तुझे अनन्तबार महादु:ख प्राप्त हुये हैं।

(4) इस संसार में निवास करते हुये तूने अनन्तबार मरण किये परन्तु केवल उस एक जैनधर्म के बिना उन मरणों की संख्या पूरी नहीं हुई अर्थात् जन्म-मरण का अन्त नहीं हुआ।

(5) हे जीव ! तूने निगोद में अन्तर्मुहूर्त काल में छ्यासठ हजार तीन सो छत्तीस (66336) बार मरण किया एवं जन्म-मरण के दु:ख को प्राप्त हुआ।

(6) हे जीव ! तूने दो इन्द्रिय अवस्था में अन्तर्मुहुर्त काल में अस्सी क्षुद्रभव धारण किये, ते इन्द्रिय अवस्था में साठ क्षुद्रभव धारण किये, चौ इन्द्रिय पर्याय में चालीस क्षुद्रभव धारण किये और पंचेन्द्रिय पर्याय में चौबीस क्षुद्रभव धारण किये।

(7) परस्पर एक-दूसरे के साथ क्रोध करते हुये ये जीव अत्यन्त घोर दु:ख पाते हैं। उनकी कभी पर्याप्ति ही पूरी नहीं होती। फिर भला ध्येय रूप बुद्धि से सर्वथा रहित वे जीव उस जिनधर्म को कैसे धारण कर सकते है।

(8) इस संसार में परिभ्रमण करते हुए इस जीव के साथ माता-पिता कुटम्बी लोग तथा अपने परिवार के मनुष्यों में से कोई भी साथ नहीं जाता। यह

जीव सदा अकेला परिभ्रमण किया करता है। इसका साथी कोई दूसरा नहीं होता।

(9) जब आयु का अन्त आता है, आयु पुरी हो जाती है। तब कोई भी उस आयु को नहीं बढ़ा सकता। न देवों का इन्द्र किसी की आयु बढ़ा सकता है न चक्रवर्ती बढ़ा सकता है। मणिमन्त्र, तन्त्र अथवा औषधि–कोई भी किसी तरह आयु को नहीं बढ़ा सकते हैं।

(10) इस समय मन, वचन, काय के योगों की विशुद्धि होने से तुझे इस जैन धर्म की प्राप्ति हुई है। इसलिये बड़े प्रयत्न के साथ प्रत्येक समय में तू समस्त जीवों को क्षमा कर तथा उनके प्रति क्षमा धारण कर।

(11) सम्यग्दर्शन के प्रतिपक्षी वा विरोधी मिथ्यात्व के तीन सौ तिरेसठ भेद हैं। यदि उनका मैंने अपने अज्ञान से श्रद्धान किया हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(12) मधु, मांस, मद्य और जुआ को आदि लेकर जो व्यसनों के सात भेद हैं उनको त्याग करने का मैंने नियम न किया हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(13) साधुओं ने या गुरुओं ने मुझे जो अणुव्रत, महाव्रत, सप्तशील यम–नियम रूप से दिये हों और उनमें से जिन–जिन की विराधना हुई हो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(14–15) नित्य निगोद की सात लाख, इतर निगोद की सात लाख, पृथिवीकायिक की सात लाख, जलकायिक की सात लाख, अग्निकायिक की सात लाख, वायुकायिक की सात लाख, वनस्पतिकायिक की दश लाख, दो इन्द्रिय की दो लाख, ते इन्द्रिय की दो लाख, चौ इन्द्रिय दो लाख, देवों की चार लाख, नारकियों की चार लाख, पंचेन्द्रिय तिर्यचों की चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख। इस प्रकार समस्त जीवों की चौरासी लाख योनियाँ है। इन चौरासी लाख योनियों में प्राप्त हुए जीवों में से जिन–जिन जीवों की विराधना मुझसे हुई हो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(16) पृथ्वीकायिक जीव, जलकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीव और

विकलत्रय जीवों में से जो जो मुझसे विराधे गये हो उनकी विराधना से होने वाला सब पाप मेरा मिथ्या हो।

(17) भगवान जिनेन्द्र देव ने व्रतों के सत्तर अतिचार बतलाये हैं। उनमें से जो जो अतिचार लगे हों या व्रतों में अनेक प्रकार से विराधना हुई हो या सामायिक और क्षमा भावों से विराधना हुई हो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(18) फल, पुष्प, छाल, लता आदि काम में लाने में जो जीवों की विराधना हुई हों, बिना छने जल से स्नान करने में जिन जीवों की विराधना हुई हो उन सबसे होने वाले मेरे सब पाप मिथ्या हों।

(19) मैंने जो शील पालन न किया हो, क्षमा धारण न की हो, विनय न किया हो, तप न किया हो, संयम पालन न किया हो, उपवास न किया हो तथा उनकी भावना न की हो, वह समस्त मेरा पाप मिथ्या हो।

(20) यदि मैंने अपने अज्ञान से कंदमूल, फल, बीज खाये हों। अन्य सचित्र पदार्थों का भक्षण किया हो वा रात्रि में भोजन किया हो तो वह सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(21) मैंने भगवान के चरण कमलों की पूजा न की हो, पात्र दान न दिया हो, ईर्या समिति पूर्वक गमन न किया हो ये सब काम न किया हो न उनकी भावना की हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(22) मैंने अपने प्रमाद जन्य दोष से ब्रह्मचर्य आरम्भ और परिग्रह में बहुत से पाप किये हों तथा उनमें जीवों की विराधना हुई हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(23) एक सौ सत्तर कर्म भूमियों में होने वाले भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल सम्बन्धी तीर्थंकरों की जो विराधना की हो, उनका अनादर किया हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(24) भगवान अरहंत परमेष्ठी, आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी और साधु परमेष्ठी की जो–जो विराधना की हो, इनकी आज्ञा भंग की हो या निरादर किया हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हो।

(25) जिन वचन, जिनधर्म, जिन चैत्यालय और कृत्रिम-अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं की जो विराधना की हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हो।

(26) सम्यग्दर्शन के आठ दोष हैं, सम्यक्ज्ञान के आठ दोष हैं और सम्यक्चारित्र के पाँच दोष हैं इनमें से जो दोष मैंने लगाये हों तो उनमें होने वाले मेरे सब पाप मिथ्या हो।

(27) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन पांचों ज्ञान में से जिस किसी ज्ञान की विराधना हुई हो तो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।

(28) आचारांग आदि ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों का स्वरूप जो भगवान जिनेन्द्र देव ने कहा हैह्न उसमें जो कुछ मुझसे विराधना हुई हो तो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।

(29) जो पंच महाव्रतों से सुशोभित हैं और अठारह हजार शीलों से जिनकी शोभा बढ़ रही है ऐसे भगवान अरहंत देव की जो कुछ विराधना हुई हो तो वह सब मेरा पाप मिथ्या हों।

(30) अनेक ऋद्धियों को धारण करने वाले गणधरदेव इस संसार में पिता के समान हैं। क्योंकि वे सब ऋषियों के गुरु हैं। उनकी जो कुछ मुझसे विराधना हुई हो तो वह सब मेरा पाप मिथ्या हों।

(31) निर्ग्रथ मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चार प्रकार के संघों में से जिस किसी की विराधना हुई हो तो वह सब मेरे पाप मिथ्या हो।

(32) वैमानिक देव-भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी और कल्पवासी देव, मनुष्य और तिर्यंच गति में रहने वाले जीवों की जो विराधना हुई हो और उससे जो पाप हुए हों वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(33) मैंने अपने अज्ञान से जो क्रोध, मान, माया, लोभ आदि रागद्वेष किये हों, वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(34) परवस्त्र और परस्त्री आदि के सम्बन्ध से प्रमाद योग पूर्वक जो पाप मैंने किए हों अथवा और जो जो न करने योग्य कार्य किये हों वे सब मेरे पाप मिथ्या हों।

(35) जो आत्मा एक है, शरीरादिक नौकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म से रहित है, स्वभाव से स्वयं सिद्ध है और सब तरह से विकल्पों से रहित है ऐसे एक परमात्मा की ही मैं शरण जाता हूँ। ऐसे परमात्मा के सिवाय अन्य कोई भी मुझे मेरे लिये शरण नहीं है।

(36) जो परमात्मा रस रहित है, रूप रहित है, गंध रहित है, सब तरह की बाधाओं से रहित और अनन्त ज्ञान स्वरूप है ऐसा एक परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है।

(37) परमात्मा का वह अनन्तज्ञान यद्यपि अपने स्वभाव में ही स्थिर रहता है तथापि वह प्रत्येक समय में समस्त ज्ञेय पदार्थों को जानता रहता है। ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है।

(38) उस परमात्मा को चाहे एक प्रकार से सिद्ध किया जाय और चाहे अनेक प्रकार से सिद्ध किया जाए, वह सदा अपने ही स्वभाव में शुद्ध बुद्ध स्वरूप में स्थिर रहता है। ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है उसके सिवाय अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है।

(39) वह परमात्मा नित्य है, शरीर के प्रमाण के बराबर है और प्रदेशों के द्वारा लोक प्रमाण है। ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है।

(40) उन परमात्मा से एक ही समय में केवलदर्शन और केवलज्ञान दोनों ही उपयोग एक साथ होते हैं। वह परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है।

(41) वह परमात्मा अपने स्वरूप में ही लीन रहते हैं, स्वाभाविक स्वभाव से ही सिद्ध है और राग द्वैषादिक वैभाविक गुणों से रहित होने के कारण समस्त कर्मों के व्यापार से रहित है। ऐसे वे परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है।

(42) वह परमात्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित होने के कारण शून्य रूप है तथा ज्ञानमय-आत्मस्वरूप होने के कारण शून्य रूप नहीं भी है। उस

परमात्मा का ज्ञान शरीरादिक नो कर्म एवं ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों से रहित है। ऐसा वह परमात्मा मुझे शरण है। उसके सिवाय मुझे और कोई शरण नहीं हैं।

(43) जो परमात्मा अपने केवलज्ञान से कभी भिन्न नहीं होता, परन्तु सब तरह के विकल्पों से वह सदा भिन्न रहता है, स्वाभाविक सुख स्वरूप है। ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है। ऐसे परमात्मा के सिवाय मुझे अन्य कोई शरण नहीं है।

(44) जो कभी किसी प्रकार से छिन्न-भिन्न नहीं होता, जो सदैव अखण्ड स्वरूप है तथा अविच्छिन्न है। अन्तिम शरीर के प्रमाण के समान है अथवा असंख्यात प्रदेशमय है। जो ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों के समान है, अर्थात् समस्त पदार्थों का ज्ञाता है और अगुरू लघु गुण से सुशोभित है ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है। उसके सिवाय मुझे अन्य कोई शरण नहीं है।

(45) जो शुभ भाव और अशुभ भाव दोनों से रहित है। जो केवल शुद्ध स्वभाव के द्वारा अपने ही आत्मा में तल्लीन है अथवा जो केवल अपने शुद्ध स्वभाव में लीन है। ऐसा ही परमात्मा मुझे शरण हैं। इसके सिवाय मुझे अन्य कोई शरण नहीं है।

(46) जो न स्त्री है, न नपुंसक है, न पुरुष है और न पुण्य-पाप रूप है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य मुझे कोई शरण नहीं है।

(47) हे आत्मन् ! इस संसार में तेरा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है तथा तू भी किसी का भाई, बन्धु या कुटुम्बी नहीं है। यह आत्मा सदा आत्मा ही रहता है। सदा अपने आत्म स्वरूप में स्थिर है, समस्त पदार्थों का ज्ञाता है, जानना इसका स्वभाव है और यह सदा शुद्ध है।

(48) मैं श्री जिनदेव की ही सदा सेवा करता रहूँ। श्री जिनेन्द्रदेव के सिवाय अन्य किसी देव को न मानूं। मेरी बुद्धि सदा जिन-शासन में, जिनधर्म में बनी रहे। जैनधर्म को छोड़कर अन्य किसी धर्म में मेरी बुद्धि न जाय। मेरा

मरण सदा समाधिपूर्वक ही हो। समाधि-मरण के सिवाय अन्य मरण न हो। यह सम्पत्ति मुझे भव-भव में प्राप्त हो।

(49) इस संसार में देव जिन ही है, देव जिन ही है, देव जिन ही है। भगवान जिनेन्द्र देव अरहंत देव ही देव है। अन्य कोई देव, देव नहीं है। धर्म दया रूप ही है, धर्म दयामय ही है, धर्म दया ही है। धर्म सदा दयामय ही होता है, दया के सिवाय अन्य कोई धर्म हो ही नहीं सकता।

(50) महा साधु नग्न दिगम्बर महर्षि होते है। महा साधु दिगम्बर जैन मुनीश्वर होते हैं, महासाधु दिगम्बर ही होते है। हे प्रभो ! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक मेरे हृदय में यही तत्व सदा बना रहे अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति पर्यन्त जिनेन्द्र देव, दयामय धर्म एवं निर्ग्रन्थ साधु के प्रति मेरी अटल श्रद्धा रहे।

(51) आज तक मेरा अनन्तकाल दुःख भोगते हुए व्यर्थ बीत गया। मैंने अब तक भगवान जिनेन्द्र देव के कहे हुए समाधिमरण के लिये कभी प्रयत्न नहीं किया।

(52) हे प्रभो ! महान पुण्योदय से इस समय मुझे भगवान जिनेन्द्र देव की कही हुई आराधना से प्राप्त हुई है। इसके प्राप्त हो जाने से अब इस संसार में ऐसी कौन सी सिद्धि अथवा सम्पत्ति है जो मुझे प्राप्त न हो अर्थात् अब इन आराधनाओं के पालन करने से मुझे समस्त सिद्धियाँ अवश्य प्राप्त हो जायेगी। इनमें किसी प्रकार सन्देह नहीं है।

(53) हे प्रभो ! आपके द्वारा कहा हुआ दया रूपी धर्म बड़ा ही आश्चर्य कारक है। यह धर्म सबसे उत्कृष्ट है व सर्वोत्तम है, इसकी मुझे जो प्राप्ति हुई है अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने वाली है। इस निर्मलकाल लब्धि एवं महान् पुण्योदय के प्रसाद से ही मुझे आराधना रूपी सर्वोत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है जिसके द्वारा ही मुझे मोक्ष का अनुपम सुख अवश्य प्राप्त होगा।

(54) इस प्रकार आलोचना, वन्दना और प्रतिक्रमण की आराधना करने से भगवान जिनेन्द्र देव का कहा हुआ मोक्ष फल अवश्य प्राप्त होता है।

।। इति श्री कल्याणालोचना सम्पूर्णम् ।।

क्षमा वंदना

क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा शांति का दाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, 'विशद' मुक्ति को पाता है।
क्षमा करता सकल जन को, क्षमा करना सभी मुझको।
अभी छदमस्थ हूँ मैं भी, नहीं है ज्ञान कुछ मुझको।
रहे मैत्री सभी जन से, किसी से बैर न मेरा।
हृदय में भावना मेरी, किसी से हो नहीं फेरा।
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा ही जग का त्राता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, 'विशद' मुक्ति को पाता है।
पाप का कर सकें छेदन, रहे यह भाव में वेदन।
क्षमा उनसे भी चाहूँगा, मेरे हाथों हुए भेदन।
त्याग दूँ दोष इस जग के, यही है भावना मेरी।
पटे खाई हृदय की जो, बनी हो पूर्व से तेरी।
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा समता को लाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, 'विशद' मुक्ति को पाता है।
दया मय भाव हो जावें, हृदय करुणा से भर जावे।
रहे भावों में शीतलता, कभी भी क्रोध न आवे।
क्षमा की तरणी बह जावे, सदा मैं भाव करता हूँ।
क्षमा भूषण है तन मन का, उसे मैं आप धरता हूँ।
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा उर में समाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी,'विशद' मुक्ति को पाता है।
कभी जाने या अनजाने, हुए हों दोष जो मेरे।
क्षमा हमको सभी करना, बड़े उपकार हों तेरे।
वीर का धर्म ये कहता, हृदय में शांति तुम धरना।
क्षमा धारण 'विशद' दिल में कि अर्पण प्राण तुम करना।
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा को धर्म गाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी,'विशद' मुक्ति को पाता है।

।। इति समाप्तम् ।।

समाधिमरण (भाषा)

गौतम स्वामी बन्दो नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ निश दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है।।
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने।
त्याग बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने।।1।।

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै।
बनिज करै परद्रव्य हरै नहिं छहो कर्म इमि साधै।।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहुँ दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी।।2।।

जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तनकी ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै।।
आग लगै अरु नाव डुबै जब धर्म विघन तब आवै।
चार प्रकार आहार त्यागि के मन्त्र सु-मन में ध्यावे।।3।।

रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारै।
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को टारै।।
जो न बने तो घर में रहकरि सबसों होय निराला।
मात-पिता सुत तियको सौंपे, निज परिग्रह इहिकाला।।4।।

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई।
क्षमा-क्षमा सब ही सों कहिके मन की शल्य हनेई।।
शत्रुनसों मिल निज कर जोरे मैं बहु कीनी बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने क्षमा करो सो भाई।।5।।

धन धरती जो मुखसों माँगै सो सब दे संतोषै।
छहों काय के प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै।।
ऊँच-नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पै लै।
दूधाधारी क्रम-क्रम तजि के छाछ अहार पहेलै।।6।।

छाछ त्यागि के पानी राखै पानी तजि संथारा।
भूमि मांहि थिर आसन मांडै साधर्मी ढिग प्यारा।।
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये।।7।।

चार अराधन मन में ध्यावै बारह भावन भावै।
दशलक्षण मुनि-धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावै।।
पैंतीस सोलह षटपन चारों दुइ इक वरन विचारै।
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञानमयी तू सारै।।8।।

अजर-अमर निज गुणसों पूरै परमानन्द सुभावै।
आनन्दकन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावै।।
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखै।
अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै।।9।।

हाड़ मांस सब सूख जाय जब धर्मलीन तन त्यागै।
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग-में सेज उठै ज्यों जागै।।
तहाँ तै आवै शिवपद पावै विलसै सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धर्म जयवन्तो।।10।।

समाधि मरण (बड़ा)

वन्दों श्री अरिहन्त परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दु:ख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करौं प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं।
अन्त समय में वह वर मांगो, सो दीजे जग-राई।।1।।

भवभव में तन धार नया मैं, भव भव शुभ सँग पायो।
भवभव में नृप रिद्धि लही मैं, मात पिता सुत थायो।।
भवभव में तन पुरुष तनों घर, नारी हू तन लीनो।
भवभव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो।।2।।

भवभव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भवभव में गति नरकतनी धर, दु:ख पावे विधि योगे।।
भवभव में तिर्यञ्च योनि धर, पायो दु:ख अतिभारी।
भवभव में साधर्मीजन को, संग मिल्यो हितकारी।।3।।

भवभव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भवभव में मैं समवसरण में, देखो जिनगुण भीनो।।
ऐसी वस्तु मिली भवभव में, सम्यक गुण नहिं पायो।
ना समाधिजुतमरण कियो मैं, तातें जग भरमायो।।4।।

काल अनादि गयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एक बार हू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो।।
जो निज पर को ज्ञान होय तो,मरण समय दु:ख काई।
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योतिस्वरूप सदाई।।5।।

विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो।।

यों क्लेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो।।6।।

अब यह अरज करों प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगो।
रोगजनित पीड़ा मत होवे, अरु कषाय मत जागो।।
ये मुझ मरण समय दु:खदाता, इन हर साता कीजे।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजे।।7।।

यह तन सात कुघात मई है, देखत ही घिन आवे।
चर्म लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विष्टा पावे।।
अति दुर्गन्ध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावे।
देह विनाशी जिय अविनाशी, नित्यस्वरूप कहावे।।8।।

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातें प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामें क्या छीजे।।
मृत्यु होने से हानि कोन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो।।9।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरी, इस अवसर के माहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम काहू नाहीं।।
ये सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे।।10।।

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई।।
राग-द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्य समय में समता धारो, पर भव पंथ सहाई।।11।।

कर्म महा दुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावे।
तनपिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे।।
भूख तृशा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दया कर, तन पिंजरा सों काढ़े।।12।।

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध-सुगन्धी अतर लगाये, षट्रस अशन कराये।।
रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी।
सो तन तेरे काम न आवे, भूल रह्यो निधि मेरी।।13।।

मृत्युराज को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्युसमय में ये ही परिजन, सबही हैं दुखदाई।।14।।

यह सब मोह चढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता।।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पति तेती।।15।।

चौआराधनसहित प्राणतज, तो ये पदवी पाओ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो।।
मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे।
ताको पाय क्लेश करो मत, जन्म जवाहर हारे।।16।।

इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सुको है।।

पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, वास शुद्ध नहिं आवे।
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावे।।17।।
मृत्युराज उपकारी जिय को, तन सों तोहि छुड़ावे।
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्‌यो पर्‌यो बिललावै।।
पुद्‌गल के परमाणु मिलकें, पिण्डरूप तन भासी।
या है मूरत मैं अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी।।18।।
रोग-शोक आदी जो वेदन, ते सब पुद्‌गल लारे।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे।।
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आज बन्यो है।
खान-पान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है।।19।।
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो।।
तनविनशनतै नाश जान निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदि को अपनो जानो, भूल अनादी छाई।।20।।
अब निजभेद जथारथ समभयो, में हूँ ज्योति स्वरूपी।
उपजे विनसे सो यह पुद्‌गल, जान्यो याकों रूपी।।
इष्ट-निष्ट जैते दुःख सुख जो हैं, सो सब पुद्‌गल लागे।
मैं जब अपनी रूप विचारों, तब वे सब दुःख भागे।।21।।
बिन समता तन अनैक घरे मैं, तिन में वे दुख पायो।
शस्त्र घात तें अनेक बार मर, नाना-योनि भ्रमायो।।
बार अनंतहिं अग्नि माहिं जर, भूवो सुमति न लायो।
सिंहव्याघ्र अहिनैक बार मुझ, नाना दुःख दिखायो।।22।।

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवे तन सुखदाई।।
यातें जब लग मृत्यु न आवे, तब लग जपतप कीजे।
जप-तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी नहिं सीजे।।23।।
स्वर्ग संपदा तप सों पावे, तपसों कर्म नसावै।
तपही सों शिवकामिनि पति है, या सों तप चित लावे।।
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता सुत बन्धु तिरिया, ये सबहैं दुखदाई।।24।।
मृत्यु समय में मोह करें ये, तातें आरत हो है।
आरततें गति नीची पावे, यों लख मोह तज्यो है।।
और परिग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीति न कीजे।
पर भव में ये संग न चालें, नाहक आरत कीजे।।25।।
जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो।।
जो पर भव में संग चले तुझ, तिनसे प्रीतिसु कीजे।
पञ्च पाप तज समता धारो, दान चार विधि दीजे।।26।।
दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लाओ।
षोडशकारण को नित चिन्तो, द्वादश भावना भावो।।
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशनरात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो।।27।।
अन्त समय में ये शुभ भावहिं, होवें आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई।।

खोटे भाव सकल जिय त्यागे, उर में समता लाके।
जा सेती गति चार दूरकर, बसो मोक्षपुर जाके।।28।।
मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं।।
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उरधारी।।29।।
तिन में कछुइक नाम कहूँ मैं, सो सुनो भव्य चित लाके।
भाव सहित अनुमोदे तासे, दुर्गति होय न ताके।।
अरु समता जिन उर में आवे, भाव अधीरज जावे।
यों निस दिन जो मुनिवर को, ध्यान हिये बिचलावे।।30।।
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालिनि जुगबालक युत, पाँव भख्यो दुखकारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।31।।
धन्यधन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तों भी श्रीमुनि नेक डिगे नाहिं, आतम सों हित लायो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।32।।
देखो गज मुनि के सिर ऊपर, विप्र अगनि बहुबारी।
शीश जले जिमि लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिंगारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।33।।

सनत्कुमार मुनि के तन में, कुष्ट-वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्यो गुण आपी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।34।।
श्रेणिकसुत गंगा में डूब्यो, तन जिननाम चितार्‌यो।
धर संल्लेखना परिग्रह छोड्‌यो, शुद्ध भाव उर धार्‌यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।35।।
समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा-वेदना आई।
तो दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।36।।
ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
नदी में मुनि बहकर डूबे, सो दुख उन नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।37।।
धर्मकोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान घर ठांढो।
एकमास की कर मर्यादा, तृषा-दुःख सह गाढ़ो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।38।।
श्रीदत्तमुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्योसाधु मन लाके।।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।39।।

वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान घर्‌यो मन लाई।
सूर्यधाम अरु उष्ण पवन को, दुःख सहो अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।40।।

अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महा-वेदना पाई।
शत्रु चंड ने सब तन छेदो, दुःख दीनो अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।41।।

विद्युतचरने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभभावन सो प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।42।।

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, वैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।43।।

दंडक नामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महा रिपु छेदी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।44।।

अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे।।
तो भी श्री मुनि समताधारी; पूरब कर्म बिचारे।।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।45।।

चाणक-मुनि गोगृह के मांही, मूँद अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।46।।

सात शतक मुनिवर ने पायो, हस्तिनापुर में जानो।
बली विप्रकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।47।।

लोह मयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये।
पाँचों पांडव मुनि के तन में, तो भी नाहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।48।।

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।49।।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकों सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।50।।

यों समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, ज्योति-स्वरूपी ध्यावो।।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।51।।

जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजे।
सो भी शकुन विचारे नीके, शुभ के कारण साजे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।।52।।

मातपितादिक अरु सर्व कुटुमसों, नीको शकुन बनावे।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावे।।
एक ग्राम के कारण एते, करें शकुन शुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तउ नहिं सोचैं प्यारे।।53।।

सर्वकुटुम्ब जब रोवन लागे, तोहि रुलावे प्यारे।
ये अपशकुन करें सुन तोकों, तूं यों क्यों न विचारे।।
अब परगति को चलत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोह तनों दुःखहानो।।54।।

होय निशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सु ध्यावो।
जब परगति की करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो।।
मोहजाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मित्र मृत्यु उपकारी तेरी, यों उर निश्चय धारो।।55।।

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुद्धिमान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचंद शिवथान।।
पंच उभय नव एक नभ, संबत सो सुखदाय।
आश्विन श्याम सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय।।56।।

श्री सोलहकारण भावना

सोलहकारण यह भवतारण, सुमरत पावन होय हियौ।
भावै श्री आनन्द महामुनि, तीर्थंकर पद बंध कियो।।
काय कषाय करी कृष अति ही, सत संजम गुण पौढ़ कियौ।
तपबल नाना रिद्धि उपन्नी, राग विरोध निवार दियौ।।
जिस बन जोगी धरै जोगेश्वर, तिस बन की सब विपत टलै।
पानी भरहि सरोवर सूखे, सब ऋतु के फल फूल फलै।।
सिंहादिक जे जात विरोधी, ते सब बैरी बैर तजै।
हंस भुजंगम् मोर मंजारी, आपस में मिलि प्रीति भजै।।
सौहे साधु चढ़ै समता रथ, परमारथ पथ गमन करै।
शिवपुर पहुँचन की उर वांछा, और न कुछ चित् चाह धरै।।
देव-विरक्त ममत्त बिना मुनि, सब सौ मैत्री भाव बहै।
आतम लीन अदीन अनाकुल, गुन बरनत नहिं पार लहै।।
एक दिना तै घोर वनांतर, ठाड़े मुनि वैराग भरै।
मौन परीषह सौ नहिं कापैं, मेरू शिखर ज्यों अचल खरै।।
सो मर नरक कमठ चर पापी, नाना भांति विपत्ति भरी।
तिस ही कानन में विकटानन, पंचानन की देह धरी।।
देखि दिगम्बर केहरि प्यौकौ, पूर्व भवांतर बैर दह्यौ।
धायौ दुष्ट दहाड़ ततच्छन, आन अचानक कंठ गह्यौ।।
तीखे नखन विदारै काया, हाथ कठोरन खंड करै।
बांकी दाढ़न सौ तन भेदे, बदन भयानक ग्रास भरै।।

यो पशुकृत परचण्ड परीषह, सम भावन सौ साधु सही।
क्रोध विरोध हिय नही आन्यौ, परमछिमा उरमांझ वही।।
धनि–धनि श्री आनन्द मुनीसुर, धनि यह धीरज भाव भजे।।
ऐसे घोर उपद्रव में जिन, जोग जुगत सौ प्रान तजे।
अंत समय परजंत तपोधन, शुभ भावन सौ नाहिं चये।
आनत नाम स्वर्ग में स्वामी, सुरगन पूजित इन्द्र भये।।

दोहा– **सुरगलोक बरनन लिखो जथा सकति सुखरीत।**
धर्म–धर्म के फल विषै, ज्यों मन उपजे प्रीत।।

***

दश लक्षण धर्म भावना

सुणो जी श्रावक के दश लक्षण धर्म पालज्यो।।टेक।।
थे तो उत्तम क्षमा धर्म पालज्यो,
थे तो क्रोध भाव सब छोड़ो जी श्रावक।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम मार्दव धर्म पालज्यो,
थे तो मान कषाय ने छोड़ो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम आर्जव धर्म पालज्यो,
थांका कषाय भाव छोड़ो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम सत्य धर्म पालज्यो,
थे तो झूठ बोलबो छोड़ो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम सौच धर्म पालज्यो,
थांका लोभ भाव सब छोड़ो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम संयम धर्म पालज्यो,
थांकी पांचू इन्द्रिया मन वश राखी जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।

थे तो उत्तम तप धर्म पालज्यो,
थांकी कर्म निर्जरा होसी जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम त्याग धर्म पालज्यो,
थे तो चार प्रकार को दान देयो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम त्याग धर्म पालज्यो,
थांकी परिग्रह की पोट उतारो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म पालज्यो जी श्रावक।।
थांका कुशील भाव सब छोड़ो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो चौके परिंडे चन्दवो राखज्यो,
थांकी चक्की न झाड़कर पीसो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थांकी रानियां न पाखो माथो न्हावतां,
मरदांरी हजामत नहीं होवै जी श्रावक।। ये दश लक्षण...।।
थांका धोबी न राखो कपड़ा धोवतां,
रंगरेजा न मांड नहीं होसी जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थांका हलवाई न राखो भट्टी झौंकता,
भड़भूजा न भाड़ नहीं होसी जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थांका तेली न राखो घाणी पेलता,
कुम्हार का आव नहीं होसी जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
थे तो इण विधि दश लक्षण पालज्यो,
थे तो स्वर्ग मुक्ति पद पावो जी श्रावक ।। ये दश लक्षण...।।
ये दश लक्षण धर्म पालज्यो।।

***

स्तुति (अहो जगतगुरु)

पं. भूधरदासकृत स्तुति

अहो ! जगतगुरु देव, सुनिए अरज हमारी।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी।।
इस भव वन में माहिं, काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चहूँगति माहिं, सुख नहिं, दुख बहु पायो।।

कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी।
मन माने दुख देहिं काहूँसों नाहिं डरैं जी।।
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नर्क दिखावै।
सुर-नर-पशुगति माहिं, बहुविधि नाच नचावै।।

प्रभु ! इनके परसंग, भव भव माहिं बुरो जी।
जे दुःख देखे देव ! तुमसों नाहिं दुरो जी।।
एक जनम की बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी।
तुम अनन्त परजाय, जानत अन्तरयामी।।

मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियों साहिब मेरे।।
ज्ञान महानिधि लूटि रंक निबल करि डार्‌यो।
इनही तुम मुझ मांहि, हे जिन ! अन्तर पार्‌यो।।

पाप पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माहिं मोहि दियो दुःख भारी।।

इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
विन कारन जगवंद्य ! बहुविधि बैर लियो जी।।

अब आयो तुम पास सुनि कर, सुजस तिहारो।
नीति निपुन महाराज, कीजै न्याय हमारो।।
दुष्टन देहु निकार, साधुनको रख लीजै।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ! ढ़ील न कीजै।।

***

संक्षिप्त सूतक विधि

सूतक में देव-शास्त्र-गुरु का स्पर्श, पूजन प्रक्षालादिक तथा मंदिरजी की जाजम वस्त्रादि को स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूतक का समय पूर्ण हुये बाद पूजनादि करके पात्रदानादि करना चाहिये।

1. जन्म का सूतक दश दिन तक माना जाता है।

2. यदि स्त्री का गर्भपात (पाँचवे, छठे महीने में) हो तो जितने महीने का गर्भपात हो उतने दिन का सूतक माना जाता है।

3. प्रसूति स्त्री को 45 दिन का सूतक होता है, कहीं-कहीं चालीस दिन का भी माना जाता है। प्रसूति स्थान एक मास तक अशुद्ध है।

4. रजस्वला स्त्री चौथे दिन पति के भोजनादिक के लिये शुद्ध होती है परन्तु देव पूजन, पात्रदान के लिये पाँचवें दिन शुद्ध होती है। व्यभिचारिणी स्त्री के सदा ही सूतक रहता है।

5. मृत्यु का सूतक तीन पीढ़ी तक 12 दिन का माना जाता है। चौथी पीढ़ी में छह दिन का, पाँचवीं-छठी पीढ़ी तक चार दिन का, सातवीं पीढ़ी में

तीन–आठवीं पीढ़ी में एक दिन–रात, नवमी पीढ़ी में स्नान मात्र में शुद्धता हो जाती है।

6. जन्म तथा मृत्यु का सूतक गोत्र के मनुष्य का पाँच दिन का होता है। तीन दिन के बालक की मृत्यु का एक दिन का, आठ वर्ष के बालक की मृत्यु का तीन दिन तक का माना जाता है। इसके आगे बारह दिन का।

7. अपने कुल के किसी गृहत्यागी का सन्यासमरण या किसी कुटुम्बी का संग्राम में मरण हो जाए तो एक दिन का सूतक माना जाता है।

8. यदि अपने कुल का कोई देशांतर में मरण करे और 12 दिन पहले खबर सुने तो शेष दिनों का ही सूतक मानना चाहिये। यदि 12 दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नान–मात्र सूतक जानो।

9. गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घर में जनें तो एक दिन का सूतक और घर के बाहर जनें तो सूतक नहीं होता। घर में दासी तथा पुत्री के प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिन का सूतक होता है। यदि घर से बाहर हो तो सूतक नहीं। जो कोई अपने को अग्नि आदिक में जलाकर या विष, शस्त्रादि से आत्महत्या करे तो छह महीने तक का सूतक होता है। इसी प्रकार और भी विचार हैं सो आदि पुराण से जानना।

10. बच्चा हुये बाद भैंस का दूध 15 दिन तक, गाय का दूध 10 दिन तक, बकरी का 8 दिन तक अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देव भेद से सूतक विधान में कुछ न्यूनाधिक भी होता है। परन्तु शास्त्र की पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये।

भक्ष–अभक्ष्य

जो पदार्थ भक्षण करनेह्न खाने योग्य नहीं होते हैं उन्हें अभक्ष्य कहते हैं। इसके पाँच भेद हैंह्न त्रस हिंसाकारक, बहुस्थावर हिंसाकारक, प्रमादकारक, अनिष्ट और अनुपसेव्य।

(1) जिस पदार्थ के खाने से त्रस जीवों का घात होता है उसे त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसेह्न पंच उदंबर फल, घुना अन्न, अमर्यादित वस्तु जिनमें बरसात में फफूँदी लग जाती है ऐसी कोई भी खाने की चीजें, चौबीस घन्टे के बाद का मुरब्बा, अचार, बड़ी, पापड़ और द्विदल आदि के खाने से त्रस जीवों का घात होता है। कच्चे दूध में या दही में दो दाल वाले मूँग, उड़द, चना आदि अन्न की बनी चीज मिलाने से द्विदल बनता है।

(2) जिस पदार्थ के खाने से अनंत स्थावर जीवों का घात होता है उसे स्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसेह्न प्याज, लहसन, आलू, मूली, गाजर आदि कंदंमूल तथा तुच्छ फल खाने से अनंतों स्थावर जीवों का घात हो जाता है।

एक निगोदिया जीव के शरीर में अनंतानंत सिद्धों से भी अनंतगुणे जीव रहते हैं और एक आलू आदि में अनंत निगोदिया जीव हैं। इसलिए इन कंदमूल आदि का त्याग कर देना चाहिए।

(3) जिसके खाने से प्रमाद या काम विकार बढ़ता है वे प्रमाद–कारक अभक्ष्य हैं। जैसेह्न शराब, भंग, तम्बाकू, गाँजा और अफीम आदि नशीली चीजें। ये स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हैं।

(4) जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी अपने लिए हितकर न हों वे अनिष्ट हैं। जैसेह्न बुखार वाले को हलुआ एवं जुकाम वाले को ठण्डी चीजें हितकर नहीं हैं।

(5) जो पदार्थ सेवन करने योग्य न हों वे अनुपसेव्य हैं। जैसेह्न लार, मूत्र आदि पदार्थ।

अभक्ष्य बाईस भी माने गये हैंह्लह्ल

ओला घोर बड़ा निशि भोजन, बहुबीजा बेंगन संधान।
बड़ पीपर ऊमर कठऊमर, पाकर फल या होय अजान।।
कंदमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छतुषार चलित रस, ये बाईस अभक्ष्य बखान।।

ओला, दहीबड़ा (कच्चे दूध से जमाये दही का बड़ा), रात्रि भोजन, बहुबीजा, बैंगन, अचार (चौबीस घण्टे बाद का), बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर, अजानफल (जिसको हम पहचानते नहीं ऐसे कोई फल, पत्ते आदि), कंदमूल (मूली, गाजर आदि जमीन के भीतर लगने वाले), मिट्टी, विष (शंखिया, धतूरा आदि), आमिष–मांस, शहद, मक्खन, मदिरा, अतितुच्छ फल (जिसमें बीज नहीं पड़े हों ऐसे बिलकुल कच्चे छोटे–छोटे फल), तुषार–बर्फ और चलित रस (जिनका स्वाद–बिगड़ जाये ऐसे फटे हुए दूध आदि) ये सब अभक्ष्य हैं।

दही बिलौने के बाद मक्खन को निकाल कर 48 मिनट के अंदर ही गर्म कर लेना चाहिए अन्यथा वह अभक्ष्य हो जाता है अथवा कच्चे दूध से भी जो यंत्र से मक्खन निकाला जाता है उसमें भी कच्चे दूध की मर्यादा एक मुहुर्त 48 मिनट की है। उसी मर्यादा के अन्दर मक्खन निकाल कर जल्दी से गर्म करके घी बना लेना चाहिए।

बाजार की बनी हुई चीजों में मर्यादा आदि का विवेक न रहने से, अनछने जल आदि से बनाई होने से सब अभक्ष्य हैं। अर्क, आसव, शर्बत आदि भी अभक्ष्य हैं। चमड़े में रखे घी, हींग, पानी आदि भी अभक्ष्य हैं। इसलिए इन अभक्ष्यों का त्याग कर देना चाहिए।

प्रयोग में नहीं लेहह्ल रविवार को नमक, सोमवार को हरी, मंगलवार को मीठा, बुद्धवार को घी, गुरुवार को दूध, शुक्रवार को दही एवं शनिवार को तेल।

***

व्रत ग्रहण करने का संकल्प

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

ॐ जय जय जय ! नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु !
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं।

ॐ ह्रीं श्री भाव पूजा, भाव वंदना, त्रिकाल पूजा, त्रिकाल वंदना कर श्री पंच–परमेष्ठी, जिनधर्म, जिनागम जिनालय, जिन चैत्य, इन नव देवताओं की साक्षीपूर्वक आत्मकल्याण के निमित्त 'व्रत का नाम' ग्रहण करने का संकल्प करता हूँ/करती हूँ और समीचीनतया पालने हेतु मन–वचन–काय से मैं (नाम) सत्संगति की कामना करता हूँ/करती हूँ।

ॐ शान्ति रस्तु, तुष्टि रस्तु, पुष्टि रस्तु, कान्ति रस्तु, कल्याणमस्तु नमः।

चौबीसों जिनराज के, चरण कमल चितलाय।
व्रत पालन, भव मेटने, अर्घ चढ़ाऊँ आय।।
जल फल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भव तार, भव तरि मोक्ष वरों।।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द–कन्द सही।
पद जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि महावीरान्त चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

***

व्रत उद्यापन (हाथ जोड़ने) का पाठ

सर्व विघ्न विनाशनाय, सर्व कल्याण हेतवे।
णमो णमो श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो नमो नमः।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

ॐ जय जय जय ! नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु !
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

ॐ ह्रीं श्री भाव पूजा, भाव वंदना, त्रिकाल पूजा, त्रिकाल वंदना कर देव-शास्त्र-गुरु की साक्षी पूर्वक श्री जिनेन्द्र देव के 'व्रत का नाम' अपने आत्मकल्याण के निमित्त यथाशक्ति यथाभक्तिपूर्वक आज पर्यन्त पालन किया है - आगे के लिए भावना भाऊँगा/भाऊँगी। हे भगवन् ! अब मैं (नाम) आज 'दिन' इस व्रत का उद्यापन (विसर्जन) आपके चरणों में पंच परमेष्ठी की साक्षीपूर्वक करता हूँ/करती हूँ। ते सहायक भवन्ति - ते सहायक भवन्ति। व्रत के पालन में जाने-अनजाने अथवा प्रमाद वश जो भी दोष, अतिचार, अनाचार लगे हों - वे सब पाप मिथ्या हों।

मैं अपने मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक क्षमायाचना कर प्रतिक्रमण करता हूँ/करती हूँ।

ॐ शान्तिरस्तु, कल्याणमस्तु, सर्व सिद्धिरस्तु।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ पद दो स्वामी।
हे ! पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अंतर्यामी।।

ॐ ह्रीं पंच परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

***

नवजात बालक का प्रथम जिन दर्शन

यह संस्कार बालक के जन्म से 45 दिन का हो जाने पर कराया जाता है। परिवार की महिलाएँ जच्चा-बच्चा को नहला कर, नवीन वस्त्र पहिनाकर गाजे-बाजे से मंगल गीत गाती हुई, देव दर्शन हेतु श्री जिन मंदिरजी ले जाती हैं। साथ में लाल या पीला एक मीटर का नया वस्त्र जिस पर साथिया अंकित हो, एक श्रीफल, ग्यारह रुपये, बादाम, चावल ले जाती हैं। मन्दिरजी पहुँचकर बाहर दरवाजे पर दोनों तरफ केशर से साथिया बनाती हैं। मन्दिरजी प्रांगण पर सात गोलियाँ रोली से बनाती हैं और उन सब में एक-एक बादाम/बताशा रखती हैं। बीच वाली गोली में लड्डू एवं सवा रुपये भी रखती हैं। जच्चा उन गोलियों को बाएँ पाँव से उंगाल कर देव दर्शन हेतु श्रीजी के सम्मुख पहुँचती है। धीरे से झालर बजाती है। वहाँ 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ जय जय जय, नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु' बोलकर बैठते हुए ढ़ोक देती हैं। तदुपरान्त साथ में लाए श्रीफल एवं ग्यारह रुपये सहित चावल व बादाम वेदी पर बालक का हाथ लगाते हुए चढ़ाती हैं।

श्रीजी के सम्मुख वेदी पर लाए हुए नए वस्त्र को बिछाकर बालक को उस पर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख सुला देते हैं। घर के वयोवृद्ध या किसी विद्वान व्यक्ति के द्वारा निम्न मंत्र पढ़कर बालक के भाल पर केशर का तिलक करें ह्रह्र

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगल कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः तव भाल स्थले सर्व सुख शान्त्यर्थं तिलकं करोमि।

मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः।।
अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।।
श्री सिद्धांत सुपाठकाः मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।
श्री वर्द्धमान मर्हन्तमनन्त शक्तिम्।
आनन्दकन्द मभिनम्य जगत् प्रकाशम्।।
धर्म प्रकाशन कृतै क्रियतेऽत्र सार्वः।
संस्कार पावन विधिर्विधिवज्जिनोक्तः।।
संस्कारतो भवति मानव विशुद्धा।
संस्कारतो भवति सर्व मनिद्यमिद्धम्।।

अब बालक के दाएँ कान में नौ बार णमोकार महामंत्र सुनावें। फिर बाएँ कान में नौ बार णमोकार महामंत्र सुनावें। अब ॐ नमोऽर्हते भगवते जिन भास्कराय जिनेन्द्र प्रतिमा दर्शने अस्य बालकस्य दीर्घायुष्यं आत्मदर्शनं च भूयात् बोलकर यह मंत्र बोलेंह्ह ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतं वर्षणे अमृत श्रावय श्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय ठः ठः ह्रीं नमः स्वाहा और बालक के शरीर पर गन्धोदक की हल्की सी वर्षा कर देवें, उसके ललाट नेत्रों के भी लगा देवें। उससे कहें – हे चिरंजीव... (नाम) आज से आप भी जिनेन्द्र देव के समक्ष जैनधर्म के उपासक बन गए हो। अब निम्नांकित आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ें और पुष्प वर्षा करें ह्ह

दीर्घायुस्तु शुभमस्तु सुकीर्तिरस्तु।
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्य समृद्धिरस्तु।।
आरोग्यमस्तु विजयोऽस्तु महोऽस्तु पुत्र–
कल्याणमस्तु तव सिद्धपति प्रसादात्।

पापानि शाम्यन्तु, घोराणि शाम्यन्तु, प्रतिकूलानि शाम्यन्तमु
पुण्यं वर्धताम्, धर्मोवर्धताम्, सौख्यं वर्धताम्।
शीलं वर्धमातम्, ज्ञानं वर्धताम्, अभयं वर्धताम्।
श्रीं वर्धताम्, आरोग्यं वर्धताम् वर्धताम् वर्धताम् वर्धताम्।।1।।

स्वस्तिभद्रंचास्तु श्री मज्जिनेन्द्र चरणार र्विन्देष्वान्द भक्तिः सदास्तु।।

(पुष्प वर्षा करें)

अब माता–पिता अपनी शक्ति अनुसार बालक को जैन बनने की प्रसन्नता में मन्दिर में कम से कम 111 रुपये चढ़ावें या गुल्लकजी में डालें।

***

नामकरण संस्कार

वैसे तो नवजात बालक का नाम कर्म संस्कार जन्म दिन के दसवें या ग्यारहवें दिन शुभ मुहूर्त में कराया जाता है। फिर भी प्रथम जिन दर्शन के समय अवश्य कर लेना चाहिए। इस हेतु निम्नांकित मंत्र पढ़कर जो नाम निकलवाया है या आपने विवेकानुसार रखा है उसे श्रीजी के सम्मुख परिजनों के सामने बोलकर सुना दिया जावे ह्ह

''अष्ट सहस्रनाम भागी भव। विजयनामाष्ट सहस्त्र भागी भव। परमनामाष्टी सहस्त्र भागी भव। नवजात बालक का नाम..... रखा गया है। कल्याणमस्तु भव। तव सिद्धपति प्रसादात्।''

।। जय जिनेन्द्र ।।

भक्तामरस्तोत्रम्

(श्रीमानतुंगाचार्य विरचित)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्।।1।।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।2।।

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित-पादपीठ स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगत-त्रपोऽहम्
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दु-बिम्ब मन्यः कः इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।3।।

वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र! शशांककांतान् कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम् को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।4।।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश! कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रम् नाभ्येति किं निजशिशोः

लघु स्वयंभू स्तोत्र

येन स्वयंबोधमयेन लोका, आश्वासिता: केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिता: केचन मोक्ष–मार्गे, तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्।।1।।

इन्द्रादिभि: क्षीरसमुद्र–तोयै:, संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेन्द्र:।
य: कामजेता जन–सौख्यकारी, तं शुद्ध–भावा–दजितं नमामि।।2।।

ध्यान–प्रबन्ध: प्रभवेन येन, निहत्य कर्म–प्रकृति: समस्ता:।
मुक्ति–स्वरूपां पदवीं प्रपेदे, तं संभवं नौमि महानुरागात्।।3।।

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां, गजादि वह्न्यन्तमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरु: परोऽयं, नौमि प्रमोदा–दभिनंदनं तम्।।4।।

कुवादिवादं जयता महान्तं, नय प्रमाणै–र्वचनै–र्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन, तं देवदेवं सुमतिं नमामि।।5।।

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये, ववर्ष रत्नानि हरे–र्निदेशात्।
धनाधिप: षण्णव–मास पूर्वं, पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुम्।।6।।

नरेन्द्र – सर्पेश्वर नाक – नाथैर् – वाणी भवन्ती जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्म–बोध: प्रथित: सभाया–महं सुपार्श्वं ननु तं नमामि।।7।।

सत्प्रातिहार्यातिशय – प्रपन्नो, गुण – प्रवीणो हत – दोष संग:।
यो लोक–मोहान्ध–तम: प्रदीपश्, चन्दप्रभं तं प्रणमामि भावात्।।8।।

गुप्तित्रयं – पंच महाव्रतानि – पंचोपदिष्टा: – समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि, तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवम्।।9।।

ब्रह्मा–व्रतांतो जिन नायकेनोत्–तम क्षमादि–र्दशधापि धर्म:।
येन प्रयुक्तो व्रत–बंध–बुद्धया, तं शीतलं तीर्थकरं नमामि।।10।।

गणे जनानंदकरे धरान्ते, विध्वस्त–कोपे प्रशमैक–चित्ते।

ऋषि मंडल स्तोत्र (हिन्दी)

(अनुवाद–आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमति माताजी)

शम्भु छन्द

आदि अक्षर 'अ' अंताक्षर 'ह' इन दो को ले लेने में।
'ख' से लेकर 'व' पर्यंत सब अक्षर आ जाते इनमें।।
अग्नि ज्वाला 'र' बीजाक्षर ऊपर यह बिंदु सहित सुंदर।
'अर्ह' यह मंत्र बना सुन्दर इससे यह मंत्र मनोमल शोधनकर।।1।।

ॐ अर्हंतो को नमस्कार, ॐ सिद्धों को द्वय नमस्कार।
ॐ सर्वसूरी को नमस्कार, ॐ पाठकगण को नमस्कार।।
ॐ सर्व साधु को नमस्कार, ॐ सम्यग्दृग् को नमस्कार।
ॐ शुद्ध ज्ञान को नमस्कार, ॐ चारित को द्वय नमस्कार।।2।।

इन अरहंतादि आठपद को, निज निज बीजाक्षर युत करके।
अठ दिश में स्थापन करते, ये लक्ष्मीप्रद है सुख करते।।,
पहला पद शिर का रक्षक हो, दूजा मस्तक का त्राण करे।
तीजा पद दोनों दृग् रक्षे, चौथा पद नासा त्राण करे।।3।।

पंचम मुख का रक्षाकर हो, छट्ठा पद ग्रीवा को रक्षे।
सप्तम पद नाभि तक रक्षे, अष्टम पद पादों तक रक्षे।।
पहले प्रणवाक्षर ॐ पुन: 'ह' को रकार औ बिन्दु सहित।
दूजी तीजी पंचम छट्ठी सप्तम अष्टम दशवीं द्वावश।।4।।

इन मात्रा युत करके पाँचों, पद के पहले अक्षर।।
फिर सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र विभक्ति युत सुखकर।
हो ह्रीं नम: बस इसविध से अतिशायी मंत्र बना सुदर।।
यह ऋषिमण्डलस्तवनयन्त्र, का मूलमन्त्र है श्रेयस्कर।।5।।

तिथि वार नक्षत्र के मेल से बनने वाले

विविध– योग

सिद्ध योग

नन्दा	1/6/11	शुक्र	नन्दा	1/6/11	रविवार–मंगल
भद्रा	2/7/12	बुध	भद्रा	2/7/12	चन्द्रवार–शुक्र
जया	3/8/13	सोम	जया	3/8/13	बुधवार
रिक्ता	4/9/14	शनि	रिक्ता	4/9/14	गुरुवार
पूर्णा	5/10/15/30	गुरु	पूर्णा	5/10/15/30	शनिवार

मृत्यु योग

अमृत सिद्धि योग

रवि को हस्त, पुष्य हो गुरु को, बुध अनुराधा, अश्विनी भोम।
अमृत सिद्धि रेवती भृगु को, मन्द रोहिणी मृगसिर सोम।।

अन्यश्च

उत्तराषाढ़ा को सोम, रवि को अनुराधा, बुध को अश्विनी, गुरु को मृगसिर, शुक्र की आश्लेषा, मंगल को शतभिषा और शनि को हस्त भी मृत्यु योग है।

सर्वार्थ सिद्धि योग

रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वार
हस्त	श्रव	अ.	रो.	रे.	रे.	श्रव	नक्षत्र
मू.	रो.	अ.	अनु.	अनु.	अनु.	रोहि	नक्षत्र
उ. 3	मृग	उ. भा	हस्त	पु.	अश्वि.	स्वा.	नक्षत्र
पु.	पु.	कृति	कृति	अ.	पुन.	0	नक्षत्र
अ.	अनु	0	मृ.	0	अ.	0	नक्षत्र

त्रिपुष्कर द्विपुष्कर योग

शनिवार, रविवार या मंगलवार को भद्रा तिथि (2, 7, 12) और कृतिका पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र हो तो इन तीनों के संयोग से त्रिपुष्कर योग होता है।

उपरोक्त तिथियों और वारों को मृगशिरा, चित्रा घनिष्ठा नक्षत्र हों तो द्विपुष्कर योग होता हैं।

त्रिपुष्कर योग में कोई अच्छा कार्य हो तो तीन अच्छे कार्य होंवे तथा त्रिपुष्कर में अच्छे कार्य घर में हो तो दो मंगल काम घर में और होंगे।

अभिजित् योग (नक्षत्र)

रविवार को 20 अंगुल की सोम को 16 की, भौम को 15 की बुध को 14 की, गुरु को 13 की, शुक्र को 12 की तथा शनि को 12 की (अंगुल की) सीक धूप में खड़ी करें और जब मध्याह्न को सींक की जड़ में छाया आ जाय उस समय एक घड़ी का अभिजित् मुहूर्त (योग) पंडितों ने कहा है, इसमें जो कार्य किये जाते हैं, सब सिद्ध होते हैं। अभिजित में पैदा हो तो राजा हो, व्यापार करे तो अच्छा लाभ हो। चाहे जैसा किसी दिन अति निषिद्ध योग हो तो भी यह योग सर्व मंगल दायक है, छाया मध्याह्न में ठीक जड़ में नहीं आवेगी, कुछ आवेगी सिन्दौसी आवेगी। क्योंकि सींक के अंगुलों में फर्क है और समय एक है।

अभिजित् योग चक्र

वार	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंगुल	20	16	15	14	13	12	12

भद्रावास

जो पुरुष भद्रा के मुख में (सन्मुख) एक कोस भी जाता है, कुछ दूर नहीं जाता है तो उसका फिर लौटना नहीं होता है। जैसेह्वह्व समुन्द्र से नदी उल्टी नहीं आती है।

पूर्व दल पर दल

कृष्ण पक्ष की दशमी और तृतीया को पर दल मैं यानि इन दो तिथियों को पिछले आधे भाग में भद्रा रहती है। और कृष्ण पक्ष को सप्तमी और चतुर्दशी को पूर्वंदल अर्थात् पहिले आधे भाग में भद्रा रहती है।

शुक्ल पक्ष की एकादशी और चतुर्थी को पर दल में भद्रा रहती है एवं शुक्ल पक्ष की अष्टमी तथा पूनम का पूर्वदल में भद्रा रहती है।

भद्रा निवास

चन्द्र	मेष, वृष, कर्क, मकर	स्वर्ग लोक	शुभ
लोक	मिथुन, कन्या, तुला, धनु	पाताल लोक	शुभ
फलम्	सिंह, वृश्चिक, मकर, कुम्भ	मृत्यु लोक	अशुभ

भद्रा मुख

लोक की भद्रा	स्वर्ग	पाताल	मृत्यु लोक
मुख	ऊपर	नीचे	सम्मुख
फल	ठीक	ठीक	खराब

पंचक विचार

धनिष्ठा नक्षत्र से रेवती नक्षत्र तक पाँच पंचक माने जाते हैं।

या **8 दिशायें**

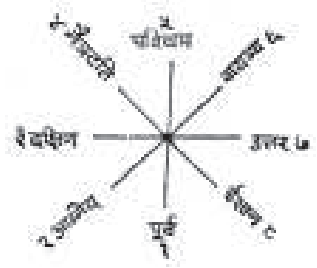

कुम्भ के चन्द्रारम्भ से मेष चन्द्रारम्भ तक पंचक माने जाते हैं। इन दिनों में घर छाना, तृण, काष्ठादि संग्रह खाट बुनना, दक्षिण दिशा में गमन करना निषिद्ध है।

दिशा शूल

सोम, शनेश्चर पूरब वासा। रवि, शुक्र पश्चिमी निवासा।।
भौम बुध उत्तर में हैं। दक्षिण में गुरु एक हैं।।

दिशा शूल पीठ पीछे या बांया श्रेष्ठ है। जैसे गुरुवार को उत्तर दिशा या पश्चिम दिशा में यात्रा करने में शुभ तथा दक्षिण में अशुभ जानों।

चन्द्र निवास

चन्द्रमा मेष, सिंह और धन राशि पर हो तो पूर्व में निवास। वृष, कन्या मकर का हो तो दक्षिण में निवास और कर्क, वृश्चिक, मीन राशि पर चन्द्र हो तो उत्तर दिशा में चन्द्रवास होता है।

चन्द्रमा सामने या दाहिना श्रेष्ठ है। बायें में धन नाश और पीठ पीछे का प्राण नाशक होता है।

योगिनी वास

1/9 तिथि को योगिनी पूर्व में। 2/10 को उत्तर में 3/11 को अग्निकोण में 4/12 को नैऋत्य कोण में। 5/13 को दक्षिण में । 6/14 को पश्चिम में, 7/15 को वायव्य कोण में। 8/30 को ईशान कोण में योगिनी वास रहता है।

योगिनी बांई तथा पीठ पीछे शुभ है। दाहिनी धन नाशक और सन्मुख मृत्युप्रद है।

काल राहू वास

शनिवार को पूर्व में, शुक्रवार को अग्निकोण में गुरुवार को दक्षिण में बुधवार को नैऋत्य कोण में, मंगलवार को पश्चिम में तथा सोमवार को वायव्य कोण में और रविवार को उत्तर दिशा में काल राहू रहता है यह यात्रा में बायें तथा पीठ में शुभ है एवं सामने और दायां नेष्ठ है।

दिशाशूल परिहार

रविवार को घी खाकर, सोमवार को दूध, मंगलवार को गुड़, बुधवार को तिल, गुरुवार को दही, शुक्रवार को जौ तथा शनिवार को उड़द खाकर तथा दान देकर यात्रा करे तो दिशा का दोष मिट जाता है।

निषिद्ध योग

ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र को पूर्वाफाल्गुनी तथा हस्त नक्षत्र को उत्तर दिशा में, पूर्वाभाद्रपद और अश्विनी को यमदिशा अर्थात् दक्षिण दिशा में और पुष्य नक्षत्र को पश्चिम दिशा में यात्रा न करें।

घात चन्द्रमा

एक, पाँच, नौ, दो, छः, दस, तीन, सात, चार, आठ, ग्यारह और बारह इस तरह ये चन्द्रमा मेघादि राशियों के पुरुषों को क्रमशः घातक होते है। जैसेह्नह्न मेष राशि वाले को पहिला, वृषभ वाले को पाँचवां, मिथुन को सातवाँ घातक है। इसी तरह सर्व राशियों को चन्द्रमा का घात जानना।

घात चन्द्र में रोग हो तो मृत्यु युद्ध में जाने से पराजय, यात्रा काल में जाने

से बन्धन होवे, विवाह में स्त्री विधवा होवे, ऐसा घातक चन्द्र फल है।

❋❋❋

वार–तिथि–नक्षत्र परत्वेन–सिद्धियोग–कुयोग चक्रम्

वार	तिथि	नक्षत्र	योग	फल
रविवार	8	अश्वि., हस्त, मूल, पुष्य धनिष्ठा तीनों उत्तरा	सिद्धि योग	शुभ
रविवार	14, 12, 7	विशाखा, मघा, ज्येष्ठा, भरणी अनुराधा	कुयोग	अशुभ
सोमवार	9, 10	पुष्य, अनुराधा, श्रवण, रोहिणी मृगशिरा	सिद्धि योग	शुभ
सोमवार	11, 6,13	चित्रा, विशाखा, पूषा, उषा	कुयोग	अशुभ
मंगलवार	8,3,7,13	मूल, अश्विनी, आश्लेषा, मृगशिर उत्तराभाद्रपद	सिद्धियोग	शुभ
मंगलवार	2, 10	शतभिषा, आर्द्रा, धनिष्ठा, पूर्वा–भाद्रपद, मघा, उत्तराषाढ़	कृयोग	अशुभ
बुधवार	12,2,7,10	अनुराधा, पुष्य, कृत्तिका, रोहिणी, मृग	सिद्धियोग	शुभ
बुधवार	3,9,1	मृग, नूल, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी	कुयोग	अशुभ
गुरुवार	10,5,15	रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य–अनुराधा	सिद्धियोग	शुभ
गुरुवार	8, 6, 4	शतभिषा, आर्द्रा, कृत्तिका, मृग–शिरा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी	कुयोग	अशुभ
शुक्रवार	11,6,1,13	चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, श्रवण, पुनर्वसु	सिद्धियोग	शुभ
शुक्रवार	2,7	रोहिणी, पुष्प, आश्लेषा, ज्येष्ठा	कुयोग	अशुभ
शनिवार	9,4,1,3	रोहिणी, स्वाती, श्रवण, पूर्वा	सिद्धियोग	शुभ

		फाल्गुनी, मघा		
शनिवार	6,7	हस्त, उत्तराषाढ़ा, चित्रा	कुयोग	अशुभ
		उत्तराफाल्गुनी, रेवती		

अमृत सिद्धि योग यन्त्र

रवि	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरु**	**शुक्र**	**शनि**
ह.	मृग.	अश्वि.	अनु.	उत्तरात्रय	श्र.	वि.कृ.
पुन पु.	रो.	रे.	श.	पुष्य	रे.	रो.

सर्वार्थ सिद्धि योग

रवि	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरु**	**शुक्र**	**शनि**
हस्त	श्रवण	अश्विनी	रोहिणी	रेवती	रेवती	श्रवण
मूल	रोहिणी	उ.भा. पद	अनुराधा	अनुराधा	अनुराधा	रोहिणी
उत्तरात्रय	मृगशिर	कृतिका	हस्त	अश्विनी	अश्विनी	स्वाति
पुष्य	पुष्य		कृत्तिका	पुनर्वसु	पुनर्वसु	
अश्विन	अनुराधा		मृगशिरा	पुष्य	श्रवण	

उक्त दोनों योगों को मुहूर्त हेतु देख लेना चाहिए। रवि से शरि तक क्रमशः भरणी, चित्रा, उत्तरायण, घनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, ज्येष्ठा, रेवती त्याज्य है।

उत्पात–मृत्यु–काण–तिथि–योग–चक्र

फल	**रवि**	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरु**	**शुक्र**	**शनि**
उत्पात	वि.	पू.षा.	घ.	रे.	रो.	पुण्य	उ.फा.
मृत्यु	अनु.	उ.षा.	श.	अश्वि.	भृ.	आश्ले.	ह.
काण	ज्ये.	अश्वि.	पू.षा.	भ.	आर्द्रा	मघा	चि.
सिद्धि	मू.	श्र.	उ.आ.	कृ.	पुन.	पू.फा.	स्वा.

(वसुनंदि प्रतिष्ठा पाठ)

उक्त मुहूर्त सामान्य रूप में हैं, परन्तु पंचाँग द्वारा इसमें प्रतिष्ठाकारक, प्रतिष्ठाचार्य व प्रतिमा नाम से भी चन्द्रमा देखा जाता है जो उनकी राशि से 4, 8 व 12 वाँ न हो। यह देखकर उस प्रतिष्ठा मुहूर्त में प्रतिमा विराजमान की जाती है। इसमें कुछ योग भी जानना हैं।

***

दिन का चौघड़िया

रवि	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरु**	**शुक्र**	**शनि**
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल

रात का चौघड़िया

रवि	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरु**	**शुक्र**	**शनि**
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ